• वर्ष ६६ • अंक १ • मूल्य ₹२०

जनवरी (प्रथम) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

उद्भट दार्शनिक विद्वान्

पंडित उदयवीर शास्त्री

जन्म जयन्ती ६ जनवरी

मुनि सत्यजित्, श्री कन्हैयालाल आर्य, श्री ओम्प्रकाश नवाल, आचार्य सोमदेव, श्री सुभाष नवाल।

मुनि सत्यजित्,डॉ सुरेंद्र कुमार, आचार्य संदीप-सोनीपत, श्री सत्यानंद आर्य।

मुनि सत्यजित्, आचार्य विजय पाल, गुरुकुल की ब्रह्मचारिणी व आचार्य सविता- लक्सर हरिद्वार, श्रीमती अनिता कोठारी।

आचार्य विजय पाल, श्रीमती अनिता कोठारी, श्रीमती रमा नवाल, डॉ मनु आर्य - खुरजा उत्तर प्रदेश व अन्य।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६६ **अंक** : ०१

दयानन्दाब्दः १९९

विक्रम संवत् - पौष कृष्ण २०८०

कलि संवत् - ५१२४

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२४

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जनवरी - प्रथम, २०२४

अनुक्रम

०१. एक भारत-श्रेष्ठ भारत	सम्पादकीय	०४
०२. जीवात्मा एवं जगत् से पृथक्...	डॉ. आशुतोष पारीक	०६
०३. सत्याचरण का संकल्प	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	११
०४. उपनिषदों में आए ईश्वर...	ब्र. विमल आर्य	१५
०५. ज्ञान सूक्त-०७	डॉ. धर्मवीर	२२
०६. भिन्न गुणों एवं प्रभावों की...	डॉ. राकेश सत्यदेव	२५
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		२९
०७. संस्था समाचार	श्री ज्ञानचन्द	३०
०८.संस्था की ओर से....		३२
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

एक भारत-श्रेष्ठ भारत

विशेष भौगोलिक सीमाओं से आवेष्टित भूखण्ड राष्ट्र नहीं होता है। राष्ट्र होने के लिए उस भूखण्ड पर रहने वाले नागरिक तथा उनकी विशिष्ट संस्कृति मिलकर राष्ट्र का निर्माण करते हैं। सांस्कृतिक विशिष्टता से युक्त भारत राजतन्त्रात्मक, गणतन्त्रात्मक आदि विविध राजप्रणालियों के माध्यम से शासन करते हुए सदैव विशिष्ट बना रहा। व्यास जी ने भारत की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है-

'वर्षं भारत भारतं प्रियं भारत भारतम्'

भारत की इस प्रियता-श्रेष्ठता का आधार शासन या शासक की एकता की अपेक्षा सांस्कृतिक एकता रही है। जब तक भारत सांस्कृतिक रूप से एक रहा, तभी तक वह श्रेष्ठ भारत रहा।

भारत की सांस्कृतिक एकता का क्षरण होने पर ही भारत का क्षरण प्रारम्भ हुआ। समाज का अनेक छोटे-छोटे वर्ग व जातियों, विशेषत: जन्मना जातियों में बँटना सामाजिक व सांस्कृतिक ऐक्य का प्रमुख विघातक है। बौद्ध एवं जैन के उदय होने पर उपास्य एवं उपासना पद्धति का भेद तो हुआ, किन्तु सांस्कृतिक एकता का वैसा क्षरण नहीं हुआ, जिस प्रकार इस्लाम व ईसाई मत के आने पर हुआ। इस्लाम के सिन्ध पर हुए आक्रमण में दाहिर की पराजय में तत्कालीन समाज के अनेक जातियों में बँटने तथा शासक-शासित जाति विद्वेष की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। वैसे जय-पराजय के अनेक कारण होते हैं, किन्तु किसी कारणवश जब एकाधिक कारण साथ मिलते हैं, तब उसका दुष्परिणाम भयावह ही होता है।

चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में काश्मीर के शासक सिंहदेव ने भी सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा कर बाहर से आने वाले षामिर (टर्की) आदि को शरण दी और उसका दुष्परिणाम चंगेज खाँ के सेनापति डलचू खाँ के आक्रमण के समय षामिर ने (जिसे सिंहदेव ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया हुआ था।) आक्रान्ताओं का साथ दिया। यहीं से कश्मीर की शेष भारत के साथ एकता का टूटना प्रारम्भ हुआ कहा जा सकता है। इसके पश्चात् का घटनाक्रम भारत की एकता और श्रेष्ठता को नष्ट ही करते रहे। इतिहास में इस प्रकार की भूलें अन्य शासक भी करते रहे।

काश्मीर के सन्दर्भ में यह प्रसंग इसलिए उपस्थित हुआ, कि भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय अंग्रेज की कुटिल नीति के कारण तत्कालीन रियासतों को भारत या पाकिस्तान में से किसी एक के साथ जाने-रहने का अधिकार मिला। भोगौलिक बटवारे का सीमांकन करने के पश्चात् रियासतों को यह स्वतन्त्रता पूर्णत: भारत की श्रेष्ठता को स्थापित होने से रोकने का षड्यन्त्र ही था।

काश्मीर के विलय के समय काश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देने के लिए धारा ३७० तथा कई वर्ष पश्चात् ३५ए संविधान में जोड़ दी गईं। शेष भारत की तो बात दूर रही, वहीं के मूलनिवासियों को पलायन करने को मजबूर होना पड़ा। यद्यपि इन्हें अस्थायी स्वरूप की कहा गया, किन्तु इनके कारण काश्मीर का शेष भारत के साथ ऐक्य स्थापन दुष्कर ही होता चला गया। ५ अगस्त २०१९ में प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की सरकार ने संसद के दोनों सदनों में विधेयक लाकर इन्हें निरस्त कर दिया।

सरकार के इस निर्णय का विरोध काश्मीर में तो नहीं हुआ, किन्तु सांस्कृति एकता के विरोधी इसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय चले गए। उच्चतम न्यायालय की ५ सदस्यीय संविधान पीठ ने सर्वसम्मत निर्णय सुनाते हुए ११ दिसम्बर २०२३ में सरकार के निर्णय को कानूनी रूप से वैध ठहराया है। केन्द्र सरकार के चार वर्ष के प्रयास से यह भी परिलक्षित होना प्रारम्भ हुआ कि ३७० तथा ३५ए के हटने से राष्ट्रीय ऐक्य पूर्णत: स्थापित भले

ही स्थापित न हुआ हो, किन्तु राष्ट्रीय ऐक्य की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण कदम तो है ही, क्योंकि धारा ३७० के रहते हुये पंजाब से सफाईकर्मियों के रूप में बुलाये हुये अनुसूचित जाति के पात्र व्यक्ति भी सफाई कर्मी के अतिरिक्त किसी अन्य विभाग में नौकरी प्राप्त नहीं कर सकते थे। इस धारा की समाप्ति के पश्चात् वह तथा अन्य योग्यता के आधार पर प्रान्तीय सरकार की सेवाओं में आवेदन करने तथा पदधारित करने के अर्ह तो होंगे साथ ही देश का कोई भी नागरिक वहाँ बसने और व्यवसाय करने का भी अधिकारी हो जाता है।

भारत राष्ट्र की श्रेष्ठता-प्रगति-विकास के लिए राष्ट्रीय ऐक्य का संवर्धन अत्यावश्यक है। आशा की जानी चाहिए कि धारा ३७० तथा ३५ए का निरस्त किया जाना एक भारत-श्रेष्ठ भारत की ओर बढ़ने का पथ प्रशस्त करेगी।

अगर आज स्वामी दयानन्द होते

- डा. सूर्यदेव शर्मा अजमेर

अगर आज स्वामी दयानन्द होते।
नये सूत्र में राष्ट्र-माला पिरोते।।
जगत में सभी वेद का गान करते,
सुधी वेद का ही सुधापान करते।
हमारी मही का महा मान करते,
हमीं धर्म से विश्व-कल्याण करते।।
हमीं विश्व में शान्ति के बीज बोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥१॥
वहीं विश्व में वेद-वीणा बजाते,
वही विश्व में शान्ति-सज्जा सजाते।
वहीं विश्व में ज्ञान-गंगा बहाते,
वहीं विश्व को प्रेम-जल से नहाते।
उसी वारि से विश्व के पाप धोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते॥ २॥
न यों हिन्दुओं का भला भाग्य फिरता,
कभी क्यों विभाजन-विकट-वज्र गिरता?
कलेजा न मां का किसी भांति चिरता,
विपति-बादलों से न सुख सूर्य घिरता।।
लगाते न हम रक्त में हाय! गोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते॥ ३॥
कभी मातृ-भू के न टुकड़े कराते,
न मुस्लिम पृथक् पाक के गीत गाते।
नहीं धर्म-निरपेक्ष के स्वप्न आते,
न हम वैदिकी सभ्यता को भुलते॥
सभी भारती-भव्य-माखन बिलोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥ ४॥
वही आज बनते सजग राष्ट्र-नेता,
वही देश की नाव के नव्य खेता।
वहीं स्वत्व स्वाधीनता के विजेता,
वही देश के पथ प्रदर्शक सुचेता।
जगाते सभी राष्ट्र के भाव सोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते॥ ५॥
नहीं साम्यवादी हमें भूत खाता,
न साम्राज्यवादी हमें फिर सताता।
हमारा कृषक औ, श्रमिक शान्ति पाता,
सदा प्रेम से राष्ट्र-नौका खिचाता।।
हमीं सूर्य सम तेज जग में संजोते।।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते॥ ६॥
अहो ऋषि दयानन्द! फिर आप आओ,
अभी सो रहे जो उन्हें तो जगाओ।
दुखी मानवों को सुपथ, सुख दिखाओ,
पुनः विश्व में वेद वीणा बजाओ।।
न प्राणी रहें पाप का भार ढोते।
अगर आज सामी दयानन्द होते ॥७॥

जीवात्मा एवं जगत् से पृथक् परमात्मा का स्वरूप : उपनिषद् वाङ्मय के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. आशुतोष पारीक

शोधपत्र संक्षेप– जब हम संसार को देखते हैं तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह संसार किसने बनाया और किसके लिए? जीवात्मा के रूप में स्वयं को इस सृष्टि की वस्तुओं का उपभोग करते हुए देख हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि इस सृष्टि का निर्माण जीवात्मा के भोग के लिए किया गया है, किन्तु इस सृष्टि का निर्माता कौन है, इस प्रश्न का उत्तर थोड़ा कठिन हो जाता है, क्योंकि जब सृष्टि की रचना हुई तो यह प्रश्नकर्त्ता उपस्थित नहीं था और फिर अनायास ही एक अदृश्य शक्ति के रूप में परमात्मा का चिन्तन होने लगता है। परमात्मा का अस्तित्व उसकी अदृश्य शक्तियों के कारण कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट रहता है। इसी कारण विचारकों ने ईश्वर के चिन्तन के लिए अनेक प्रकल्पों और विकल्पों का चयन किया। इन्हीं विकल्पों ने अद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत और त्रैत जैसे सिद्धान्तों को बल दिया।

परमात्मा को जानने की इच्छा ने उसे अद्वितीय तो बनाया, किन्तु उसको स्वयं से पृथक् रूप में देखने का साहस नहीं किया। स्वयं के अकेलेपन और भय के कारण हमने परमात्मा को स्वयं से इस प्रकार जोड़ लिया किया कि परमात्मा, जीवात्मा और जगत् की पृथक्–पृथक् सत्ता से इनकार करने लगे। किन्तु महर्षि दयानन्द ने हमें इस भय, आशंका से दूर करने का अप्रतिम प्रयास किया और त्रैतवाद के माध्यम से न केवल परमात्मा का, अपितु जीवात्मा का भी स्वतन्त्र अस्तित्व प्रमाणित किया। वेद के समान उपनिषद् भी इस मूल के समर्थक हैं।

संकेताक्षर– परमात्मा, जीवात्मा, जगत्, त्रैतवाद, उपनिषद्, महर्षि दयानन्द, सत्, असत्, निश्चल, अनन्त, अनादि, स्वतन्त्र, परतन्त्र, अदृश्य, परोक्ष, प्रत्यक्ष, सत्य, सत्यान्देषी, विवेक।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[१]

दार्शनिक जगत् के लिए यह सृष्टि, उसकी उत्पत्ति और ईश्वर व आत्मा से इसका सम्बन्ध आदिकाल से ही कौतुहल का विषय रहा है। अत: दार्शनिकों ने प्राय: इन्हीं तीन तत्त्वों ईश्वर, आत्मा और जगत् के पारस्परिक सम्बन्धों का ही विविध प्रकार से मन्धन किया है। जगत् के विशाल और आश्चर्यपूर्ण विस्तार को देखकर विस्मित हुआ प्राणी ईश्वर से कैसे जुड़ सकता है? यह दार्शनिकों के चिन्तन का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय रहा है।

भारतीय दर्शन आत्मा एवं ईश्वर के माध्यम से भौतिक जगत् की ओर देखने की बात करता है, तो पाश्चात्य दर्शन भौतिक जगत् से आत्मा और ईश्वर को जानने का प्रयास करता है। मार्ग व आधार भिन्न होने पर भी वैज्ञानिक दृष्टि से यह चिन्तन अत्यावश्यक हो जाता है कि सृष्टि की उत्पत्ति में मूलभूत तत्त्व कितने हैं। इस हेतु प्रचलित निम्न सिद्धान्तों पर विचार किया जा सकता है–[२]

१. एकत्ववाद (Monism)

२. द्वैतवाद (Dualism)

३. त्रैतवाद या बहुत्ववाद (Triadism or Pluralism)

पाश्चात्य जगत् में डेकार्ट ने तीन मूलसत्ताओं को माना है। मध्वाचार्य तथा रामानुजाचार्य भी त्रैतसत्ता को स्वीकार करते हैं। आचार्य शंकर का अद्वैतवाद भी 'व्यवहार सत्', 'माया', 'उपाधि', 'लीला' आदि शब्दों के द्वारा मौन रूप में एकत्व में सिमट कर नहीं रह पाये। उपनिषदों, गीता, सांख्यादि में भी प्रकृति के अतिरिक्त जिस पुरुष का निर्देश किया है, वह चेतनतत्त्व भी पिण्ड में आत्मा तथा ब्रह्माण्ड में परमात्मा के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है।

यदि परमात्मा व प्रकृति के साथ जीव को न माना

जाये तो यह सम्पूर्ण सृष्टि निष्प्रयोजन लीलामात्र-खेलमात्र रह जायेगी। वेद त्रैतवाद का पूर्णतः प्रतिपादन करता है। वेदों के साथ-साथ प्रायः प्रत्येक वाद के पोषकों ने भी त्रैतवाद का समर्थन किया है। महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर, जीव और जगत् के विषय में सप्तम और अष्टम समुल्लास में सविस्तार चर्चा की है। त्रैतवाद की पुष्टि में ऋग्वेद का यह मन्त्र बड़ा ही मनोरंजक व सारगर्भित है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्ष परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वति अनश्नन् अन्यः
अभिचाकशीति।।[३]

अर्थात् वृक्ष पर बैठे दो पक्षियों का रूपक के माध्यम से वर्णन करते हुए पिण्ड रूप में स्थित आत्मा व ब्रह्माण्ड रूप में स्थित परमात्मा के जगद्विषयक विविध भाव को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ वृक्ष व उसके फल भोग्यरूप प्रकृति, उन फलों को खाने वाला पक्षी भोक्तृरूप आत्मा तथा उसे खाता हुआ देखने वाला परमात्मा के रूप में सृष्टि की तीन मूलसत्ताओं का वर्णन किया गया है।

परमात्मा की सृष्टि से पूर्व अवस्थिति को प्रतिपादित करते हुए ऋग्वेद कहता है-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक
आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा
विधेम।।[४]

नासदीय सूक्त[५] भी कार्यसृष्टि से पूर्व सर्वशक्तिमान् परमेश्वर व जगत् निर्माणार्थ कारणरूप सामग्री के अस्तित्व को बताता है। नासदीय सूक्त में मन्त्र कहता है कि हे मनुष्य! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है जो धारण और प्रलयकर्ता है जो इस जगत् का स्वामी है, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है। उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्ता मत मान।[६]

उपनिषद् भी ईश्वर, जीव और प्रकृति के बारे में अनेक स्थानों पर विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।[७]

यह मन्त्र ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति तीनों का ही एक साथ वर्णन करता है। आइए देखते हैं- ईश्वर को आच्छादक के रूप में सर्वव्यापक बताया गया है। 'जगत्' शब्द के द्वारा प्रकृति और विकृति का वर्णन किया है तथा 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' के द्वारा प्रकृति का भोग करने वाले जीवात्मा का वर्णन किया है। उपनिषदों में जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति का उल्लेख अलग-अलग और कहीं-कहीं पर एक साथ भी किया गया है। किन्तु इन सभी वर्णनों का उद्देश्य इन तीनों के बारे में वैदिक मत की सम्पुष्टि ही रहा है। यजुर्वेद में कहा गया है-

''वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था
विद्यतेऽयनाय।।''[८]

ईश्वर का परमभक्त योगी समाधिस्थ अवस्था में कहता है इस महान् पुरुष सकल ब्रह्माण्ड में व्यापक सच्चिदानन्द सर्वोत्तम ज्ञानज्योति वाले ओम् वाच्य ईश्वर को मैं देख रहा हूँ, जान रहा हूँ जो कि अन्धकार से अज्ञान से परे है। उसी को सम्यक् जान लेने पर जीव जन्म-मृत्यु के बन्धन से छूटकर परान्त काल तक मोक्षानन्द में रहता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में तैत्तिरीयोपनिषद् के मन्त्र का उल्लेख करते हैं-

यतो वा इमानि भूतानि भूतानि जायन्ते येन जातानि
जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।।[९]

महर्षि दयानन्द इस मन्त्र का अर्थ सृष्ट्युत्पत्ति प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे जीते और प्रलय को प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म है।[१०]

प्रश्नोत्तर शैली में वे आगे लिखते हैं- ''**प्रश्न**- यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है या अन्य से? **उत्तर**-

निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है। **प्रश्न**- क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की? **उत्तर**- नहीं। वह अनादि है। प्रश्न अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं? **उत्तर**- ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीनों अनादि हैं।[११]

जीव और ईश्वर के स्वरूप के विषय में महर्षि दयानन्द ने सतर्क और शास्त्रीय प्रमाणों के साथ प्रतिपादन किया है-

प्रश्न- ''जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है? **उत्तर**- दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है, परन्तु परमेश्वर की सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सबको नियम में रखना, जीव को पाप-पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं और जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, शिल्पविद्या आदि अच्छे-बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्य, आनन्द, अनन्त बल हैं और जीव के-

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति।।[१२]

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनो गतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि।।[१३]

पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा, दुःखादि की अनिच्छा, वैर, पुरुषार्थ बल, आनन्द, विलाप, अप्रसन्नता, विवेक, पहचानना ये तुल्य हैं, परन्तु वैशेषिक में प्राण को बाहर निकालना, प्राण को बाहर से भीतर लेना, आँख मीचना, आँख को खोलना, निश्चय, स्मरण और अहंकार करना, चलना, सब इन्द्रियों को चलाना, भिन्न-भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादि का होना। ये जीवात्मा के गुण परमात्मा के गुणों से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी चाहिए क्योंकि वह स्थूल नहीं है।[१४]

ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, निराकार, अजन्मा और शब्दस्पर्शादि भौतिक गुणों और तन्मात्राओं से रहित है। वह अनादि और अनन्त है। महत् तत्त्व से परे है। नित्य, निश्चल और पवित्रकर्ता है। ऐसे ईश्वर को जानने और मानने पर ही योगी मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। कठोपनिषद् में ईश्वर के इसी स्वरूप का सुन्दर निदर्शन किया गया है-

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यद् अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुक्ते।।[१५]

छान्दोग्योपनिषद् जगत् विषयक चिन्तन को स्पष्ट करता है-

''सोम्यान्नेन सोम्य शुंगेनापो मूलमन्विच्छ अद्भिस्सोम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः।।[१६]

महर्षि दयानन्द सरस्वती इसका अर्थ इस प्रकार लिखते हैं- हे श्वेतकेतो! अन्नरूप पृथिवी कार्य से जलरूप मूल कारण को तू जान। कार्यरूप जल से तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्य से सद् रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है। यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था; अभाव न था।''[१७]

जीवात्मा का वर्णन करते हुए कठोपनिषद् में लिखा गया है-

आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।[१८]

अर्थात् आत्मा रथी है अर्थात् रथ का मालिक है। शरीर एक रथ है, बुद्धि सारथि है और मन लगाम है। इन्द्रियों घोड़े हैं, इन्द्रियों के विषय वे मार्ग हैं जिन पर इन्द्रियरूपी घोड़े दौड़ते हैं। मनीषी लोग कहते हैं कि जब आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन मिलकर कोई काम करते हैं तब मनुष्य 'भोक्ता' कहलाता है।

त्रैतवाद अर्थात् तीन मूलभूत सत्ताओं ईश्वर, आत्मा और प्रकृति को सृष्टि का आधार स्वीकार किया गया है। आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द ने त्रैतवाद को ही वैदिक सृष्टि प्रक्रिया का मूलभूत सिद्धान्त माना। साथ ही रामानुजाचार्य (जन्म १०१७ ई.) तथा मध्वाचार्य (जन्म १११९ ई.) भी ईश्वर और आत्मा की पृथक्-पृथक् सत्ता मानते थे।

सृष्टि के तीन कारणों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है–

		अरस्तु (385–322 ई. पू.)	आधुनिक नाम	उदाहरण (घट)	सृष्टि के विषय में कारणविचार
उपादान कारण	समवायी कारण	Causa Materialis	Material Cause	मिट्टी	प्रकृति / परमाणु
निमित्त कारण	निमित्त कारण	Causa Efficiens	Efficient Cause	कुम्हार	ब्रह्म / ईश्वर
साधारण कारण (आकारिक कारण)	असमवायी कारण	Causa Formalis	Formal Cause	चाक आदि	ब्रह्माण्ड में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अप्, तेजः, वायु, आकाश तथा पिण्ड में ज्ञानेन्द्रियाँ–कर्मेन्द्रियाँ आदि
–	–	Causa Finalis	Final Cause	पानी भरना (कार्य का उद्देश्य / प्रयोजन)	जीवात्मा को कर्म–फल देना, विकास की ओर अग्रसर करना

वैदिक सिद्धान्त मूलतः इसी सिद्धान्त का पोषक है। उपनिषदों में भी परमात्मा के प्रकृति और जीवात्मा से पृथक्त्व का उल्लेख प्राप्त होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् का यह मन्त्र परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहता है–

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।।[१९]

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में इस मन्त्र का अर्थ कहते हुए लिखते हैं– ''परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपने शक्तिरूप हाथों से सबका रचन, ग्रहण करता है; पग नहीं, परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान् है; चक्षु के गोलक नहीं हैं, परन्तु सबको यथावत् देखता; श्रोत्र नहीं, तथापि सबकी बातें सुनता है; अन्तःकरण नहीं, परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं; उसी को सनातन, सबसे श्रेष्ठ, सबमें पूर्ण होने से 'पुरुष' कहते हैं।''[२०]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में परमेश्वर के कार्यों का वर्णन करते हुए कहा गया है–

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते,
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।[२१]

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में इस मन्त्र का अर्थ कहते हुए लिखते हैं– ''परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं। न कोई उसके तुल्य और न अधिक है।

सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया है, वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय न कर सकता, इसलिए वह 'विभु' तथापि 'चेतन' होने से उसमें क्रिया भी है।''[२२]

इसी क्रम में पुरुष और प्रकृति में अन्तर को स्पष्ट करते हुए श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है–

''**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।।**''[२३]

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में इस मन्त्र का अर्थ कहते हुए लिखते हैं- ''जो जन्मरहित सत्त्व, रज, तमोगुणरूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है। अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं प्राप्त होता सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है और प्रकृति सृष्टि में सविकार और प्रलय में निर्विकार रहती है।''[२४]

''क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वरः।।''[२५]

अतः कहा जा सकता है कि सांख्य, उपनिषद् और गीता भी मूल रूप में ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों मूल सत्ताओं को स्वीकार करते हैं। पुरुष सूक्त में पुरुष का सर्वांगिक विवेचन किया गया है। पुरुष को अनन्त, सर्वत्र व्याप्त एवं अन्तर्यामी कहा गया है।

जीव, प्रकृति और परमात्मा का वर्णन करता हुआ अथर्ववेद का यह मन्त्र द्रष्टव्य है-

बालात् एकम् अणीयस्कम् उत एकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया।।[२७]

अर्थात् बाल से भी अधिक सूक्ष्म अणुतम जीव, अत्यन्त सूक्ष्म अदृश्य प्रकृति तथा समग्र जगत् का आलिंगन करने वाला सर्वव्यापक परमात्मा मेरा सर्वाधिक प्रिय है।

सन्दर्भ सूची-

१. यजुर्वेद ४०.१५

२. महर्षि दयानन्द के ''जगद्विषयकचिन्तन की वेदमूलकता'' विषय पर वेदगोष्ठी २०१६ के मेरे द्वारा प्रस्तुत आलेख में इन तीनों ही वादों पर सविस्तार चर्चा एवं समीक्षा करते हुए महर्षि दयानन्द के जगद्विषयक चिन्तन की वेदमूलकता को प्रतिपादित किया था। अतः अनावश्यक विस्तार एवं पुनरावृत्ति न हो इस दृष्टि से उन विषयों को यहाँ छोड़ते हुए आगे बढ़ा जा रहा है।

३. ऋग्वेद १.१६४.२० अथर्ववेद ९.९.१०

४. ऋग्वेद १०.१२९.१

५. पूर्ववत् १०.१२९.१-७

६. पूर्ववत् १०.१२९.७

७. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र १

८. यजुर्वेद ३१.१८

९. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली अनुवाक-१

१०. सत्यार्थप्रकाश- स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, अष्टम समुल्लास पृ. सं. १३९

११. पूर्ववत् पृ. सं. १४०

१२. न्याय सूत्र १.१.१०

१३. वैशेषिक सूत्र ३.२.४

१४. सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, अष्टम समुल्लास पृ. सं. १२७-१२८

१५. कठोपनिषद् १.२.१५

१६. छान्दोग्योपनिषद् प्र. ६, खण्ड ८, मन्त्र ४

१७. सत्यार्थप्रकाश- स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, अष्टम समुल्लास पृ. सं. १४१

१८. कठोपनिषद अध्याय-१, वल्ली-३, मन्त्र-३

१९. श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय-३, मन्त्र-१९

२०. सत्यार्थप्रकाश- स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, सप्तम समुल्लास पृ. सं. १२४

२१. श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय-६, मन्त्र-८

२२. सत्यार्थप्रकाश- स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, सप्तम समुल्लास पृ. सं. १२४

२३. श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय-५. मन्त्र-५

२४. सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, सप्तम समुल्लास पृ. सं. १२५

२५. योगदर्शन- महर्षि पतंजलि, समाधिपाद सूत्र २४

२६. सहस्रषीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वत स्पृष्ट्वाऽत्यतिष्ठद्दषांगुलम्।। यजुर्वेद ३१.१

२७. अथर्ववेद १०.८.२५

चलदूरभाष : ९४६०३५५१७२

सत्याचरण का संकल्प

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी),
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–अग्निः, छन्दः–आर्ची त्रिष्टुप् (३३), स्वरः–धैवतः]

विषयः– किं च तद्वाचो व्रतमित्युपदिश्यते ॥

(पूर्वोक्त मन्त्र में वर्णित वाणी का व्रत क्या है, इस विषय का उपदेश प्रस्तुत मन्त्र में किया गया है।)

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि[१] तच्छकेयं[२] तन्मे राध्यताम्[३] ।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि[४] ॥ –यजु० १.५ ॥

[अनु०-०, नि०-६, उ०-९, स्व०-६, प्र०-१२ = ३३ अक्ष०, क०मं०-२, पा०-४]

पदपाठः– अग्ने । व्रतपतऽ इति व्रतऽ पते । व्रतम् । चरिष्यामि ।[१] तत् । शकेयम् ।[२] तत् । मे । राध्यताम् ॥[३]
इदम् । अहम् । अनृतात् । सत्यम् । उप । एमि[४] ॥ ५ ॥

[अनु०-१६, नि०-५, उ०-१०, स्व०-४, प्र०-५ = ४० अक्ष०, अव०प०-१, ग०प०-०, स०प०-१५]

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
अग्ने	हे सत्योपदेशकेश्वर!॥	हे सत्य-मार्ग का उपदेश करनेवाले, तेजस्विता से पूर्ण,
व्रतपते	व्रतानां सत्यभाषणादीनां पतिः पालकस्तत्संबुद्धौ॥	सत्यभाषण आदि व्रतों की पालना करने में सहायक परमेश्वर एवं विद्वान् उपदेशक !
व्रतम्	सत्यभाषणं सत्यकरणं सत्यमानं च॥	मैं सत्य बोलने, सत्य स्वीकार करने तथा सत्य आचरण करने रूपी व्रत का
चरिष्यामि	अनुष्ठास्यामि॥	निरन्तर अनुष्ठान करूँगा।
तत्	व्रतमनुष्ठातुम्॥	मैं उस सत्याचरण रूप व्रत का अनुष्ठान करने में
शकेयम्	यथा समर्थो भवेयम्॥	समर्थ हो सकूँ;
तत्	तस्यानुष्ठानं पूर्त्तिश्च॥	वह
मे	मम॥	मेरा अनुष्ठान और उसकी पूर्ति

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
राध्यताम्	संसेध्यताम्॥	निर्बाध रूप से सिद्ध हो; ऐसी मेरी प्रार्थना है।
इदम्	प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतम्॥	यह मेरा सत्याचरण रूप व्रत है; इसीलिए
अहम्	धर्मादिपदार्थचतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्यः॥	धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ-चतुष्टय की कामना करने वाला मैं साधारण-सा मनुष्य
अनृतात्	न विद्यते ऋतं यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्मिथ्याभाषणान्मिथ्याकरणान्मिथ्यामानात् पृथग्भूत्वा॥	असत्य बोलने, असत्य स्वीकार करने तथा असत्य आचरण को छोड़कर
सत्यम्	यद्वेदविद्यया प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः सृष्टिक्रमेण विदुषां सङ्गेन सुविचारेणात्मशुद्धया वा निर्भ्रमं सर्वहितं तत्त्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत्॥ सत्यं कस्मात् सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा। (निरु०३.१३)॥	सत्य बोलने, सत्य स्वीकार करने तथा सत्य आचरण करने रूपी व्रत को
उप	क्रियार्थे॥	निकटता से
एमि	ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि॥ अयं मन्त्रः। (शत०१.१.१.१-६) व्याख्यातः ॥ ५॥	सिद्ध करने के लिए निरन्तर आगे बढ़ता जा रहा हूँ।

तत्त्वबोध–

१. अग्ने, व्रतपते – अगि गतौ[१] + नि[२] + संबोधन। सम्बोधन में आद्युदात्त[३] । मन्त्र में दो सम्बोधन पद हैं। उपासक जैसी प्रार्थना करता है, वह वैसे ही विशेषणों से युक्त सम्बोधन करता है। 'सत्य बोलने, सत्य स्वीकार करने तथा सत्य आचरण करने रूपी व्रत की पालना' यह प्रार्थना है। 'अग्नि' प्रकाश और शोधन के सामर्थ्य का सामान्य पर्याय है; जो सत्य के सर्वाधिक समीप है। 'व्रतपति' सम्बोधन सीधे-सीधे व्रत की पालना से जुड़ा है। सत्य-व्रत की पालना में आध्यात्मिक दृष्टि से परमेश्वर ही प्रेरक और पालक है; क्योंकि वह ही अनादि काल से सबका परम गुरु है। सांसारिक दृष्टि से सत्याचरण के प्रभाव से तेजस्वी विद्वान् भी अपने उपदेश और व्यवहार से सत्याचरण के लिए प्रेरित करता है; अतः उपदेष्टा के रूप में वह भी प्रार्थनीय है।

१. भ्वादिगण परस्मैपदी।

२. अङ्गेर्नलोपश्च॥ –उणादि० ४.५०॥

३. आमन्त्रितस्य च॥ –अष्टा० ६.१.१९८॥

२. व्रतम्, सत्यम् – मन्त्र में व्रत और सत्य दोनों एक-दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हैं; सत्याचरण ही व्रत है, व्रत ही सत्याचरण है। महर्षि दयानन्द 'सत्य' को परिभाषित करते हुए लिखते हैं – "[सत्य अर्थात्] वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करनेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया" जो मन, वचन और कर्म से सत्याचरण रूप व्रत है; वह अनुष्ठान करने योग्य है।

३. चरिष्यामि – यदि इसके स्थान पर 'करिष्यामि' प्रयोग होता तो भी कथ्य पूरा हो जाता, परन्तु 'करना' और 'आचरण करना' दोनों में भाव की दृष्टि से बहुत अन्तर है। 'आचरण करना' में जो निरन्तरता है वह 'करना' में नहीं है। इसीलिए महर्षि इसके पदार्थ में 'अनुष्ठास्यामि = अनुष्ठान करूँगा' ऐसा व्याख्यान करते हैं। अनुष्ठान शब्द से भी निरन्तरता की भावाभिव्यक्ति होती है। यह सत्य-व्रत जीवन का अङ्ग बन जाए, यही अनुष्ठान है। लृट् लकार का प्रयोग व्रतानुष्ठान में उपासक के दृढ़ संकल्प को प्रकट करता है।

४. इस मन्त्र से जो **ग्रहण करने योग्य प्रेरक-भाव** है, महर्षि दयानन्द उसे मन्त्र के भावार्थ में इस प्रकार प्रकट करते हैं– "परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियमपूर्वक अनुष्ठान करने योग्य इस सत्य-धर्म का उपदेश किया है। जो कि न्याययुक्त, पक्षपात से रहित, परीक्षा किया हुआ, सत्यता से युक्त, सब का हितकारी तथा इस लोक अर्थात् सांसारिक सुख और परलोक अर्थात् मोक्ष सुख का हेतु है, वही सत्य-धर्म सब को आचरण करने योग्य है; और जो इससे विरुद्ध है वह अधर्म कहाता है, वह किसी के भी ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता। इसी प्रकार हम सभी को भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! हम लोग वेदों में आप के द्वारा प्रकाशित किए गए सत्य-धर्म का अवलम्बन करना चाहते हैं। हमारी यह इच्छा आपकी कृपा से पूर्ण हो; जिससे हम लोग इस सत्यधर्म का पालन करके अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें। जिससे हम अधर्म का सर्वथा परित्याग करके अनर्थ, कुकर्म, सांसारिक-बन्धन तथा दुःख रूप फलों के कारण बननेवाले पापकर्मों को स्वयं छोड़ने और दूसरों से छुड़वाने में समर्थ हो सकें। हे परमात्मन् ! जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं, वैसे ही हम लोग भी आप की कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालन करनेवाले हों। इस प्रकार सदैव धर्माचरण ही करने की इच्छा रखते हुए अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुंचाने वाले हों; ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये।"[४]

---

४. "ईश्वरेण सर्वमनुष्यैरनुष्ठेयोऽयं धर्म उपदिश्यते। यो न्यायः पक्षपातरहितः सुपरीक्षितः सत्यलक्षणान्वितः सर्वहिताय वर्त्तमान ऐहिकपारमार्थिकसुखहेतुरस्ति स एव सर्वमनुष्यैः सदाचरणीयः। यच्चैतस्माद्विरुद्धो ह्यधर्मः स नैव केनापि कदाचिदनुष्ठेयः। एवं हि सर्वैः प्रतिज्ञा कार्य्या। हे परमेश्वर! वयं वेदेषु भवदुपदिष्टमिमं सत्यधर्ममाचरितुमिच्छामः। येयमस्माकमिच्छा सा भवत्कृपया सम्यक् सिध्येत्। यतो वयमर्थकाममोक्षफलानि प्राप्तुं शक्नुयाम। यथा चाधर्मं सर्वथा त्यक्त्वाऽनर्थकुकामबन्धदुःखफलानि पापानि त्यक्तुं त्याजयितुं च समर्था भवेम। यथा भवान् सत्यव्रतपालकत्वाद् व्रतपतिर्वर्त्तते तथैव वयमपि भवत्कृपया स्वपुरुषार्थेन यथाशक्ति सत्यव्रतपालका भवेम। एवं सदैव धर्मं चिकीर्षवः सत्क्रियावन्तो भूत्वा सर्वसुखोपगताः सर्वप्राणिनां सुखकारकाश्च भवेमेति सर्वैः सदैवेषितव्यम्॥ शतपथब्राह्मणेऽस्य मन्त्रस्य व्याख्यायामुक्तं मनुष्याणां द्विविधमेवाचरणं सत्यमनृतं च तत्र ये वाङ्मनःशरीरैः सत्यमेवाचरन्ति ते देवाः। ये चैवानृतमाचरन्ति ते मनुष्या अर्थादसुरराक्षसाः सन्तीति वेद्यम्॥"

(यजु० १.५ पर महर्षि दयानन्द का संस्कृत में भावार्थ

५. शतपथब्राह्मण में इस मन्त्र की व्याख्या में कहा गया है कि मनुष्यों का दो प्रकार का आचरण होता है; सत्य और असत्य आचरण। जो लोग वाणी, मन और शरीर से सत्याचरण करते हैं वे देव कहलाते हैं। असत्याचरण करने वाले मनुष्य अर्थात् असुर या राक्षसवृत्ति वाले होते हैं।[५]

६. महर्षि का सम्पूर्ण जीवन सत्य के लिए समर्पित रहा। उन्होंने सत्य के साथ किसी भी कारण से समझौता नहीं किया। सत्य के लिए ही वे जिए और सत्य-भाषण के कारण ही उनका बलिदान हुआ। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम भी '**सत्यार्थ प्रकाश**' रखा। '**आर्याभिविनय**'[६] तथा '**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**' में भी इस मन्त्र का व्याख्यान किया।

७. प्रार्थना और पुरुषार्थ- महर्षि केवल प्रार्थना मात्र से सत्याचरण की बात नहीं करते अपितु तदनुरूप पुरुषार्थ करना भी आवश्यक है। वे इसी मन्त्र के व्याख्यान में स्पष्ट लिखते हैं –"ईश्वर ने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रक्खा है, उतना पुरुषार्थ अवश्य करें। उसके उपरान्त ईश्वर के सहाय की इच्छा करनी चाहिये। क्योंकि मनुष्यों में सामर्थ्य रखने का ईश्वर का यही प्रयोजन है कि मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ से ही सत्य का आचरण अवश्य करना चाहिये। जैसे कोई मनुष्य आँख वाले पुरुष को ही किसी चीज को दिखला सकता है, अँधे को नहीं, इसी रीति से जो मनुष्य सत्यभाव, पुरुषार्थ से धर्म को किया चाहता है उस पर ईश्वर भी कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्योंकि ईश्वर ने धर्म को करने के लिये बुद्धि आदि बढ़ने के साधन जीव के साथ रक्खे हैं। जब जीव उनसे पूर्ण पुरुषार्थ करता है, तब परमेश्वर भी अपने सामर्थ्य से उस पर कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्योंकि सब जीव कर्म करने में स्वाधीन और पापों के फल भोगने में कुछ पराधीन भी हैं"॥[७]

---

५. "सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः। एतद्ध वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम्॥" –शत०१.१.१.४-५॥

६. द्र० – आर्याभिविनय, द्वितीय प्रकाश की ४६वीं स्तुति।

७. "अस्यैव धर्मास्यानुष्ठानमीश्वरप्रार्थनया स्वपुरुषार्थेन च कर्त्तव्यम्। नापुरुषार्थिनं मनुष्यमीश्वरोऽनुगृह्णाति। यथा चक्षुष्मन्तं दर्शयति नान्धं च, एवमेव धर्मं कर्तुमिच्छन्तं पुरुषार्थकारिणमीश्वरानुग्रहाभिलाषिणं प्रत्येवेश्वरः कृपालुर्भवति नान्यं प्रति चेति। कुतः? जीवे तत्सिद्धिं कर्तुं साधनानामीश्वरेण पूर्वमेव रक्षितत्वात्, तदुपयोगकरणाच्च। येन पदार्थेन यावानुपकारो ग्रहीतुं शक्यस्तावन्स्वेनैव ग्रहीतव्यस्तदुपरीश्वरानुग्रहेच्छा कार्येति॥"

–ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोक्तधर्मविषयः॥

मुक्त पुरुषों को 'युगपत्' ज्ञान होता है

जिसे 'धनञ्जय' वायु का ज्ञान हुआ है और जिसकी आत्मा उसमें सञ्चार कर सकती है और जिनके आत्मा से पूर्वजन्म संस्कार निकल चुके हैं वह और जिसके आत्मा में स्थायी शान्ति उत्पन्न हुई है, जिसके आत्मा को अत्यन्त पवित्रता, स्थिरता, ज्ञानोन्नति की पहचान हो चुकी है और जिसकी दृष्टि को और मनोवृत्ति को ज्ञान सुख के बिना अन्य सुख विदित नहीं है, ऐसे योगी को परमानन्द प्राप्त होता है। ऐसे मुक्त पुरुषों को देश, काल, वस्तु परिच्छेद का 'युगपत्' ज्ञान होता है, उन्हें 'युगपत्' ज्ञान का अटक नहीं है। जैसे एक कण शक्कर चींटी को मिले तो वह उसे ले जाना चाहती है; परन्तु उसे एक शक्कर का गोला मिल जाये तो उसी शक्कर के गोले को वहीं पर चाट लिपट जाती है; इसी तरह योगियों की आत्मा की स्थिति परमानन्द प्राप्त होने पर होती है। **–स्वामी दयानन्द सरस्वती (पूना प्रवचन)**

उपनिषदों में आए ईश्वर के विभिन्न नाम एवं उनकी अन्वर्थता

ब्र. विमल आर्य

महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में लिखते हैं, 'जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम हैं।' अत्यल्प सामर्थ्य वाला मनुष्य अनन्त नामों में से ईश्वर के कुछ ही नाम जान सकता है, जो वेद उपनिषदादि में साक्षात् वर्णित हैं। मनुष्य की कृतकृत्यता के लिए इतना पर्याप्त भी है। ११ उपनिषदों में परमात्मा के अनेक नाम आए हैं, जो कि परमात्मा के गुण-कर्म अथवा स्वभाव पर आधारित हैं, एक भी नाम निरर्थक नहीं है। वस्तुतः ईश्वर का कोई भी नाम निरर्थक हो ही नहीं सकता। महर्षि दयानन्द जी प्रथम समुल्लास में लिखते हैं- 'परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्रादि के धनपति आदि नाम (अनर्थक) होते हैं।' ईश्वर के नाम केवल अन्वर्थ ही नहीं अपितु सर्वांश में अन्वर्थ हैं। लोक में किसी का नाम अन्वर्थ है, पर वो सर्वांश में अन्वर्थ हो ऐसा आवश्यक नहीं, जैसे किसी का नाम 'परमवीर' है और ये नाम उसके बहुत अधिक बलवान होने के कारण ही है, इसलिए अन्वर्थ है, पर वह व्यक्ति नाम के अनुरूप सबसे अधिक वीर हो ऐसा आवश्यक नहीं है, न ही लोक व्यवहार ऐसी अपेक्षा रखता है। लोक के विपरीत ईश्वर के नाम सभी अंशों में अर्थ के अनुरूप हैं, क्योंकि ईश्वर में ईश्वरीय गुण-कर्म-स्वभावों की पराकाष्ठा है पूर्णता है, जैसे ईश्वर का एक नाम दयालु है तो दया जितनी अधिक हो सकती है, दया की जो पराकाष्ठा है वह ईश्वर में है। अतः दयालु नाम ईश्वर के लिए सर्वांश में सार्थक है। पर मनुष्यादि में आंशिक सार्थक है, थोड़ी-सी दया होने पर भी उस मनुष्य को दयालु कह दिया जाता है।

लोक में वस्तुओं के नाम का मुख्य प्रयोजन प्रायः अन्य वस्तुओं से भेद-ज्ञान करना रहता है। पर ईश्वरीय नामों का मुख्य प्रयोजन ईश्वर की विशेषताओं, उसके स्वरूप को अर्थात् ईश्वर नामक तत्त्व में विद्यमान विभिन्न गुणों को, स्वभावों को तथा ईश्वर द्वारा जीवात्मा के लिए किए जाने वाले कर्मों को जनाना है। ईश्वर के नामों से ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान होता है और वह यथार्थ ज्ञान होता है। जिससे जीवों की ईश्वर में प्रीति होती है। यदि ईश्वर के नाम का बोध न हो तो ज्ञान के अभाव में प्रीति हो ही नहीं सकती। जैसे पशु पक्षियों को ईश्वरसत्ता का ज्ञान न होने से ईश्वर के प्रति कोई प्रीति नहीं होती, तथा ईश्वरसत्ता का ज्ञान होने पर भी विपरीत ज्ञान के कारण परिवारादि में हुई हानि को ईश्वर का अन्याय मानने से प्रीति नहीं होती।

मनुष्य के लिए यह परम आवश्यक है, कि उसकी ईश्वर में विशेष प्रीति हो, क्योंकि जीव मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वे किसी पदार्थ को तभी प्राप्त करना चाहते हैं, जब उससे उनका लगाव हो, प्रेम होने पर ही उसकी प्राप्ति के निमित्त पुरुषार्थ करते हैं या उसकी बातों को मानने में प्रवृत्त होते हैं। जीवमात्र की ये नित्य चाह है कि मैं पूरी तरह सुखी रहूं, दुःख मुझे स्पर्श भी न करे। जीव में स्वयं तथा प्रकृति के सानिध्य में इस इच्छा को पूरा करने का सामर्थ्य नहीं है। उसकी यह इच्छा केवल ईश्वर-कृपा से उसके सान्निध्य से ही पूर्ण हो सकती है, जीव के पास कोई दूसरा विकल्प ही नहीं है-

'नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय।' यजु. ३१/१८

अतः ईश्वर प्राप्ति हेतु मनुष्य की ईश्वर से प्रीति होनी अनिवार्य है, तथा प्रीति हेतु ईश्वर के ज्ञान का होना और यथार्थ ज्ञान का ही होना अनिवार्य है। ईश्वर ही मेरी इच्छा पूरी कर सकता है, मुझे पूर्ण सुखी कर सकता है, यह बोध आवश्यक है तथा लौकिक व्यवहार में ईश्वरीय

निर्देशों के अनुसार भी व्यक्ति तभी व्यवहार करना पसन्द करता है, जब उसे ईश्वर से प्रेम हो और उसे ये विश्वास हो कि ईश्वर सबसे अधिक बुद्धिमान् तथा हितैषी है, उसकी बात मानने से मैं संसार में सुखपूर्वक रह सकता हूँ।

प्रभु के विभिन्न नामों से उसकी महिमा का उसके स्वरूप का बोध होता है, हमारी उससे प्रीति होती है, इच्छा पूर्ति की आशा दिख पड़ती है। हम प्रभु प्राप्ति के लिए व्याकुल हो पुरुषार्थ करने लगते हैं तथा प्रभु को प्राप्त कर दुःख से सदा के लिए छूट जाते हैं (**'तत्र कः शोकः'** ईश्-७)। अमृत सुख पा लेते हैं और संसार में उसकी आज्ञाओं का पालन करते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

सभी ऋषि-मुनि, विद्वान् एवं साधक इस बात से एक मत हैं, कि ईश्वर का मुख्य नाम 'ओ३म्' है, तथा अन्य सभी नाम इसी ओम् से जुड़ जाते हैं। उपनिषदों में यत्र-तत्र ओम् नाम बहुधा प्राप्त होता है, यथा- **'तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओम् इत्येतत्'** (कठ २/१५)। हम उपनिषदों में आए विभिन्न नामों की ओम् पदवाच्य ईश्वर के साथ अन्वर्थता पर विचार करते हैं।

प्रथम उपनिषद्, ईशावास्योपनिषद्, का आरम्भ ही ईश्वर वाचक संज्ञा 'ईश' से होता है। ये शब्द 'ईश ऐश्वर्ये' धातु के कर्त्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय से सिद्ध होता है, इस प्रकार ईश् का अर्थ हुआ ऐश्वर्य वाला। ऐश्वर्य अर्थात् स्वामित्व, ईश्=स्वामी। प्रभु के पास क्या ऐश्वर्य है, वे किसके स्वामी हैं? उत्तर इसी मंत्र के अगले भाग में है **'जगत्यां जगत्'** इस संसार में जो कुछ भी है, यह सारा जगत् इसके स्वामी के द्वारा ढका हुआ है/अधिकार में है। किसी पदार्थ का स्वामी वह होता है, जिसका उस पदार्थ पर अधिकार हो, नियंत्रण हो। जैसे कोई व्यक्ति घोड़े का स्वामी तभी तक कहलाता है, जब तक उसका घोड़े पर नियंत्रण है, यदि वह घोड़ा अनियंत्रित होकर वन में भाग जाए तो वह घोड़ा स्वामी-विहीन हो जाता है, तब वह व्यक्ति घोड़े का स्वामी नहीं कहलाता। इस प्रकार देखें तो ज्ञात होता है प्रभु जगत् के स्वामी हैं अर्थात् संसार उनके नियंत्रण में है। समस्त आध्यात्मिक तथा लौकिक ज्ञान-विज्ञान के स्वामी ईश्वर हैं। महर्षि दयानन्द कहते हैं 'सब सत्य विद्या...उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।' बिना ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान के/ज्ञान प्राप्ति की व्यवस्था के जीव कुछ भी ज्ञान नहीं कर सकता, यहाँ तक कि सुख दुःखानुभव भी नहीं कर सकता बस मूर्च्छावत् रहता है।

संसार में देखा जाता है कि किसी पदार्थ के स्वामी/शासक/नियंत्रक दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे जो उस पदार्थ को स्वयं उत्पन्न करते हैं बनाते हैं, जैसे किसी स्वर्णकार ने स्वयं अंगूठी बनाई और अपनी ही अंगुली में पहन ली या कोई पिता स्वयं पुत्र उत्पन्न करके उसका नियंत्रक स्वामी होता है। दूसरे प्रकार के स्वामी वे होते हैं, जो स्वयं तो उत्पन्न नहीं करते पर अपने पास सामर्थ्य होने से और रक्षा कर सकने से उसे अपने नियंत्रण में रखते हैं। जैसे स्वर्णकार द्वारा बनाई अंगूठी का स्वामी किसी अन्य व्यक्ति का होना या अनाथ बच्चे को गोद लेकर उसका स्वामी होना। ईश्वर दोनों प्रकार से स्वामी है। इस जगत् को स्वयं बनाता है (**याथातथ्यतोऽर्थान्.** ईश-८) एवं मूल प्रकृति और जीवों को स्वयं न बनाकर भी मूल प्रकृति से उपयोग लेने में समर्थ होने से तथा जीव की रक्षा करने, उसे कर्मानुसार भोग कराने, मोक्ष सुख प्रदान करने से प्रकृति और जीवों का स्वामी है। संसार में उत्तम स्वामी वही माना जाता है, जिसकी व्यवस्था का अधीनस्थ उल्लंघन न कर पाए, वह उसके पूर्ण नियंत्रण में हो। ईश्वर के अधीनस्थ कार्य जगत्, प्रकृति, जीव उसकी व्यवस्था का किञ्चित् भी अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं **यस्य सर्वमिदं वशे** (अथर्व. ११/४/१)। अतः ईश्वर को उत्कृष्ट स्वामी होने से परम विशेषण से सम्बोधित किया जाता है- परमेश्वर।

केनोपनिषद में ईश्वर के लिए **'यक्ष'** नाम का अनेक

बार प्रयोग हुआ है-**किमिदं यक्षमिति** (केन. तृतीय खण्ड २)। यक्ष्यते पूज्यते असौ यक्षः (यक्ष पूजायाम्+कर्मणि घञ्।) जिसकी पूजा की जाती है, जो पूजा (सत्कार/सम्मान/आदर) के योग्य है। अब सहज प्रश्न उठता है, कि पूजा के योग्य कौन है? किसकी पूजा की जाती है? लोक में हम देखते हैं, जो शान्त हो दूसरों के प्रति सदा हितैषी हो, सात्त्विक प्रसन्नता जिसमें हो, निष्कपट हो वो पूजनीय होता है, ये स्वभाव के कारण पूजा हुई। गुणों के भी कारण पूजा होती है, जैसे कोई भौतिक विज्ञान का विद्वान् या खिलाड़ी। ऐसे ही परोपकार के कार्य करने से कर्मों के कारण पूजा होती है, जैसे प्रधानमंत्री, समाजसेवक आदि। इस प्रकार लोक में हम देखते हैं, किसी एक विशेषता के कारण भी व्यक्ति पूजा का पात्र होता है और जिस परमात्मा में दिव्य स्वभाव गुणों तथा कर्मों का भण्डार हो वो कितना अधिक पूजनीय होगा?

संसार में सत्कार प्राप्त कराने वाली विशेषताएं चाहे दयालुता हो या अतिशय बल हो या ज्ञान-विज्ञान का होना हो या फिर न्यायकारी निष्कपट होना हो आदि ये सभी विशेषताएं एकत्र तथा सर्वाधिक मात्रा में कहीं हैं, तो वह ईश्वर ही है। यजुर्वेद तथा ईशोपनिषद् के ऋषि कहते हैं- '**तद्धावतोऽन्यानत्येति**' चाहे कोई बल प्राप्ति की दौड़ लगाए, चाहे जान प्राप्ति की, चाहे योगाभ्यास की या धनादि प्राप्ति की ईश्वर उन सबको पार कर जाता है अर्थात् ईश्वर पहले से ही उस गुण/स्थिति की अन्तिम सीमा को प्राप्त है। -यजु. ४०-४, ईश् ४

केनोपनिषद् के जिस प्रकरण में यक्ष नाम प्रयुक्त हुआ है, उसमें भी यक्ष नाम की अन्वर्थता दृष्टिगोचर होती है। वहाँ चित्रित किया है, अग्नि वायु जो कि प्राकृतिक पदार्थों के उपलक्षण हैं, उनकी शक्ति परमात्मा के सामने इतनी तुच्छ है, जैसे हो ही नहीं। अग्नि अपनी समस्त शक्ति से एक तिनके को भी यक्ष (ईश्वर) के सम्मुख जला नहीं सकी और न ही वायु उस तिनके को उड़ा सकी। समस्त प्राकृतिक पदार्थों की महिमा तथा इन्द्र (जीव) की महिमा प्रभु के ही आश्रित है **ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वम्** (केन. चतुर्थखण्ड १)। निश्चित ही सभी जड़-चेतनों को शक्ति देने वाला सबसे अधिक महान् है सबसे अधिक पूजनीय है वह यक्ष है।

कठोपनिषद् की तृतीया वल्ली के १५वें श्लोक में ईश्वरवाचक अनेक नाम आए हैं, जिनमें एक है 'अव्ययम्।' अव्यय कहते हैं जो जितना जैसा है वह उतना/वैसा ही रहे। संसार में उत्पन्न प्रत्येक वस्तु समय के साथ कम होती है, घटती है और कम (क्षीण) होते-होते पूरी नष्ट हो जाती है, अपने कारण में विलीन हो जाती है। पर परमात्मा क्षीण नहीं होता। क्षीण वह पदार्थ ही होता है, जो दो या दो से अधिक पदार्थों से मिलकर बना हो, क्योंकि दो पदार्थ कभी भी एक स्वभाव के नहीं होते इसलिए स्वभाव भिन्नता होने से भले ही प्रयत्नपूर्वक उनको लम्बे समय तक मिलाए हुए रखा जाए पर कभी न कभी तो वे वियोग को प्राप्त हो ही जाएंगे- **संयोगाश्च वियोगान्ताः** (सांख्य.)। परमात्मा शुद्ध है एकतत्त्व है, वह दो या अधिक पदार्थों के सम्मिश्रण से नहीं बना है, अतः व्यय से रहित है सदा एकरस है और परमात्मा में क्षीण होना न होने से उसका पूर्ण विनाश भी कभी नहीं होता इसलिए प्रभु को नित्य भी कहा जाता है। ईश्वर एक तत्त्व होने से अव्यय है, इससे यह भी सिद्ध होता है कि वह काल की दृष्टि से अनादि है, क्योंकि पदार्थ सादि (जो कभी उत्पन्न होता हो) तभी होता है, जब वह अवयवों से मिलकर बने अतः बिना अवयवों वाला एकतत्त्व अभाव से उत्पन्न कैसे हो सकता है? इससे परमात्मा अनादि है।

स्वाभाविक है कि जब परमात्मा अव्यय है, तो उसके गुणादि भी अव्यय ही होंगे। उसके बल, आनन्द, ज्ञानादि का किञ्चित् भी ह्रास कभी नहीं होता।

प्रश्नोपनिषद् के १०वें श्लोक में ईश्वर को 'अभयम्' सम्बोधित किया है।

अविद्यमानं भयं यस्य यस्माद् वा तद् अभयम्।

जिसको कोई भय नहीं है तथा जिससे कोई भय नहीं है, वह है अभय। संसार की कोई भी जड़ अथवा चेतन शक्ति परमात्मा की शक्ति के समान या अधिक कभी हो ही नहीं सकती। जिसकी शक्ति प्राप्त किए बिना जड़ तथा चेतन जगत् क्रिया करने में समर्थ ही नहीं हो सकता (**को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्**– तै. ब्र. वल्ली ७) ऐसी उस महाशक्ति का अभिभव कौन कर सकता है? जगत् तथा जीवात्माओं की समस्त शक्ति मिलकर भी ईश्वरीय शक्ति की तुलना में १ अंक भी हासिल नहीं करती अर्थात् शून्यवत् है।

इतने अधिक शक्तिशाली होकर भी प्रभु करुणा के सागर हैं। वे लौकिक शक्तिशाली मनुष्यों की तरह किसी का शोषण, अन्यायादि नहीं करते। सर्वदा मंगल ही चाहने और करने वाले प्रभु एक माँ की तरह हमें गोद में रखना चाहते हैं। माँ की गोद में डर कैसा? पर उस माँ का आश्रय तभी प्राप्त होता है जब हम स्वयं सब प्राणियों को सर्वथा सर्वदा पूर्णरूपेण अभय प्रदान कर दें– **ओम् अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा** (सं. विधि संन्यास संस्कार)।

नहीं तो वह ईश्वर 'भयानां भयम्' भयंकर है दुष्टों के लिए भयस्वरूप है।

मुण्डकोपनिषद् तृतीय मुण्डक के तीसरे श्लोक में ईश्वरवाची नाम 'ब्रह्मयोनिः' मिलता है। इस नाम से ईश्वर की महान् विद्वत्ता तथा जीवों पर परम उपकार का पता चलता है। ब्रह्म शब्द वेद के लिए प्रयुक्त हुआ है। **ब्रह्मणां वेदानां योनिरादिकारणं यः स ब्रह्मयोनिरीश्वरः।** जो वेदों की उत्पत्ति का मूल कारण है वह है ब्रह्मयोनिः अर्थात् ईश्वर।

वस्तुतः वेद कभी उत्पन्न नहीं होते वे तो ईश्वरीय ज्ञान हैं, इसलिए ईश्वर के नित्य होने से नित्य हैं। इसी तथ्य को महर्षि दयानन्द जी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में लिखते हैं– 'वेद तो ईश्वर की नित्य विद्या है उसकी उत्पत्ति वा अनुत्पत्ति हो ही नहीं सकती।' इससे अगला वाक्य ध्यातव्य है– परन्तु हम जीव लोगों के लिए ईश्वर ने जो वेदों का प्रकाश किया है...। अर्थात् वेदों की उत्पत्ति का कथन हम जीवों की दृष्टि से है इसे व्यावहारिक सत्य कहते हैं जैसे ये कथन कि सूर्य उदय हुआ अस्त हुआ, पारमार्थिक सत्य तो यही है कि सूर्य उदय नहीं हुआ बल्कि पृथ्वी के घूमने से हम सूर्य की ओर उन्मुख हो गए।

ब्रह्मयोनि शब्द से ईश्वर को वेदज्ञान–प्रदाता जानकर जहाँ ईश्वर के परम उपकार को अनुभव करने से हम कृतज्ञ होते हैं। वहीं वेदों के प्रति भी ईश्वरीय ज्ञान होने से श्रद्धा उत्पन्न होती है, जिससे हम अज्ञानता से कुछ स्थलों पर वेदों के निर्देश समझ न आने पर भी निःशङ्क होकर तदनुसार आचरण करके विविध सुखों को, उन्नतियों को प्राप्त करते हैं।

इसी श्लोक में आगे कहा कि 'ब्रह्मयोनि को जानकर (परमं साम्यमुपैति) परम शान्ति को जीव प्राप्त होता है।' परम शान्ति को प्राप्त करने के लिए ईश्वर को ब्रह्मयोनि के रूप में देखना आवश्यक है और वह तब सम्भव है, जब हम वेदों को पढ़ें समझें, तभी वेदों के कारण ईश्वर सही से समझ आ सकते हैं। जैसे सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के अनुशीलन से ही स्वामी दयानन्द जी के विचार/व्यक्तित्व/भावनाएँ सही से समझ आती हैं, नहीं तो वे एक साधारण व्यक्ति जैसे ही हैं। ईश्वर के सही स्वरूप, महत्ता को समझने के लिए वेद को पढ़ना अनिवार्य संकेत इस श्लोक में आए ब्रह्मयोनि नाम से मिलता है।

माण्डूक्योपनिषद् के १२वें श्लोक में ईश्वर को 'प्रपञ्चोपशमः' संज्ञा दी है। प्रपञ्च उपशम का अर्थ है सभी बाह्य लक्षणों से रहित केवल अपना शुद्ध स्वरूप से बोध होना जैसे सृष्टि जो जाग्रत अवस्था के तुल्य है, इस सृष्टि से जोड़कर ब्रह्म को समझना, सृष्टि पालन से प्रक्रिया को देखकर समझना आदि सापेक्ष से जान होता है। गाड़ी चलाने वाला देवदत्त ठीक है, किन्तु गाड़ी न चलाते

समय भी वह देवदत्त ही है। वैसे सभी प्रपंच इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय आदि क्रिया लक्षणों से रहित पूर्ण प्रशान्त ब्रह्म जिनमें कभी विचलन नहीं होता न द्रव्यात्मक और न ही ज्ञानात्मक विकार/बदलाव आता है पूर्ण शान्त स्वरूप को प्रपञ्चोपशम कहा गया है।

ऐतरेय उपनिषद् के प्रथम श्लोक का आरम्भ ईश्वर के अन्वर्थ नाम 'आत्मा' से हुआ है। **अत सातत्यगमने।** जो सतत गतिशील ज्ञानवान्=सचेत रहता है, अपने को तथा अन्यों को सदा जान रहा होता है कभी क्षणमात्र के लिए भी द्रष्टाभाव से रहित नहीं होता वह ईश्वर आत्मा कहलाता है। यद्यपि प्रभु स्वयं गतिरहित हैं, उनमें कोई क्रिया नहीं हाती पर उनकी प्रेरणा से हमेशा कुछ न कुछ क्रिया होती रहती है। सृष्टि का निर्माण-पालन-विनाश करना, कर्मफल देना, वेदज्ञान देना, पाप कर्मों को करने से पहले भय, शंका, लज्जा उत्पन्न करना, पुण्य कर्मों में आनन्द उत्साह निर्भीकता प्रदान करना, प्रार्थना करने पर सहायता देना, योगियों को अपना स्वरूपदर्शन देना तथा प्रलयकाल में भी मुक्तात्माओं को अपना आश्रय देना, उन्हें अमृत सुख प्रदान करना इत्यादि कर्म ईश्वर सतत करते हैं।

प्रलयकाल में जब बद्ध जीव भी अचेतावस्था में रहते हैं तब भी प्रभु सचेत ही रहते हैं इसका प्रमाण इसी श्लोक में मिलता है। श्लोक में कहा- **आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।** अर्थात् सृष्टि से पहले प्रलयकाल में भी एक आत्मा=ईश्वर का नाम आत्मा अन्वर्थ है, क्योंकि वह सदा सचेत गतिशील है, यह अन्वर्थता इसी श्लोक द्वारा प्रतिपादित की गई है। ईश्वर जैसा सतत गतिशील ज्ञानवान् कोई और नहीं है अत: ईश्वर को ही परम आत्मा कहते हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद् ब्र. वल्ली सप्तमानुवाक में परमात्मा को 'सुकृतम्' कहा है- **तत् सुकृतम् उच्यते। सुष्ठु कृतं सृष्ट्यादिरचनं येन तत् (ब्रह्म) सुकृतम्।** जिसने सृष्ट्यादि रचना ठीक-ठीक की है वह परमात्मा सुकृत है। परमात्मा द्वारा बनाई गई ये सृष्टि अनुपम है, पूरी तरह व्यवस्थित है। इस सृष्टि में एक भी वस्तु एक भी तारा, ग्रहादि अनर्थक नहीं। सभी प्रत्यक्ष या परोक्षतया जीवों के भोग तथा अपवर्ग प्राप्ति में कारण बनते हैं। जीवों को सुख-दु:ख, भोग तथा मोक्ष प्राप्ति की योग्यता सम्पादन के लिए ही प्रभु ने ये सृष्टि रची है- **भोगापवर्गार्थं दृश्यम्,** योग. २/१८। इसलिए सम्पूर्ण सृष्टि सार्थक है। सृष्टि के जिस पदार्थ को जैसा होना चाहिए वो वैसा ही प्रभु ने बनाया है। उस पदार्थ को जो प्रयोजन सिद्ध करना चाहिए वह उसी को सिद्ध कर रहा है, उसे जैसे गति करनी चाहिए, वह वैसे ही गति कर रहा है। चाहे वह स्थूल रचनाएँ सूर्यादि हों या सूक्ष्म रचनाएँ बुद्धि मन इन्द्रियादि हों।

सृष्टिगत पदार्थों की रचना उनके परस्पर के सम्बन्ध से एक-दूसरे पर होने वाले प्रभावों को ध्यान रखकर की गई है। किसी एक वस्तु को बनाकर उससे उपकार लेना सरल है पर अनेक वस्तुएं बनाकर उनसे तथा उनके परस्पर के सम्बन्ध-समायोजन से उपकार लेना अत्यन्त कठिन है। ये कार्य महान् ज्ञान की अपेक्षा रखता हुआ सृष्टिगत है, जिसे सर्वज्ञ प्रभु बड़ी सरलता से कर लेते हैं, क्योंकि प्रभु प्रत्येक वस्तु को तथा उनके समुच्चय से होने वाली भिन्नताओं को, समस्त प्रक्रियाओं को भलीभांति जानते हैं, इसी तथ्य को महर्षि व्यास जी कहते हैं- **यदिदं...प्रत्येकसमुच्चयग्रहणं...यत्र निरतिशयं स सर्वज्ञ:।** (यो. व्या. भाष्य १/२५)

उपनिषद् में आगे कहा कि परमात्मा सुकृत क्यों है? उत्तर दिया '**यद्वै तत् सुकृतम्**' क्योंकि उसने जो कुछ रचा बिल्कुल ठीक रचा है।

छान्दोग्य ७/२३/१ श्लोक में ईश्वर को 'भूमा' शब्द से विशेषित किया। बहु+इमनिच्=भूमा। अर्थ हुआ जो महान् है, असीम है, निरतिशय है। उक्त श्लोक में कहा- **यो वै भूमा तत्सुखं न अल्पे सुखमस्ति।** थोड़े में सुख

नहीं है जो असीम सुख है, कभी भी कितना भी भोगने पर कम न होने वाला सुख है वही वास्तव में सुख है। छान्दोग्य के ऋषि ने सांसारिक सुख को सुख की कोटि से बाहर कर दिया, क्योंकि ये बहुत थोड़ा है जल्दी समाप्त हो जाता है, तृप्त नहीं करता, व्याकुलता शांत करने के स्थान पर और अधिक बढ़ा देता है। व्याकुलता दुःख है, ये सांसारिक सुख भोगने वाले की शक्ति सामर्थ्य को क्षीण करता जाता है। अभी जितने साधनों से सुख का अनुभव हो रहा है कुछ समय बाद सुख की उतनी ही मात्रा के लिए और अधिक साधनों की अपेक्षा होगी, अतः सांसारिक सुख, सुख नहीं है, बल्कि विष मिश्रित खीर के समान दुःखमय ही है। अन्य सभी ऋषि भी इसमें एकमत हैं। महर्षि जैगीषव्य कहते हैं कि पिछली १० सृष्टियों में करोड़ों जन्म लेकर मैंने जो भोगा चाहे उनमें देवयोनि अथवा मनुष्य योनि भी क्यों न हो वह सब दुःख ही है- योग. व्यास भाष्य ३/१८।

थोड़े में सुख कहाँ? जो अपरिमित सुख है वही सच्चा सुख है। ईश्वर ही अपरिमित सुख है। ध्यातव्य है कि यहां 'ईश्वर का सुख' नहीं कहा बल्कि 'ईश्वर ही सुख है' कथन किया है। लोक में 'ईश्वर का सुख' कथन तो विकल्पवृत्ति से होता है वास्तव में तो ईश्वर सुखस्वरूप ही है, ईश्वर का सुख ईश्वर से अतिरिक्त कुछ नहीं है जैसे मिठास गुड़ से अलग नहीं है, गुड़ ही मिठास है- **रसो वै सः** (तै. ब्र.वल्ली ७)।

बृहदारण्यक के ३/२७/२३वें श्लोक में ब्रह्म को कहा 'मन्ता'। जो मनन करने वाला है। बिना विचार किए नासमझी से अनायास ही कोई कार्य ईश्वर नहीं करता। चाहे वह कार्य जगत् का रचन हो अथवा वेदों का प्रकाश करना या फिर जीवों को कर्मफल देना हो।

यदि किसी वस्तु का निर्माता उसको बनाने से पूर्व ही उस वस्तु से होने वाले हानि-लाभों को हानि से बचने के उपायों को तथा वह वस्तु कब तक उपयोगी रहेगी इत्यादि बातों को जानता है, तो हम कहते हैं कि ये चीज विचारपूर्वक सुनियोजित ढंग से बनाई गई है। ईश्वर मन्ता है उसकी समस्त कृति सुनियोजित है उसके द्वारा प्रदत्त वेद बुद्धिपूर्वक हैं-

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे (वैशेषिक ६/१/९)। ईश्वर को सृष्टि के भावी परिणाम का ज्ञान है, कोई ग्रह आदि किस काल में किस स्थान पर होगा, किस अवस्था वाला होगा तथा उसका अन्य पदार्थों पर क्या प्रभाव होगा यह ईश्वर को पहले से ही ज्ञात है। प्रतिदिन जीव विचित्र घटनाएं करते जाते हैं, किसका कितना फल देना है? कब देना है? आदि सब कुछ ईश्वर मननपूर्वक करता है, इसलिए जो भी हमें कर्मफल मिला है वह सब ईश्वर ने तर्कपूर्ण न्याय से उचित ही दिया है, इसलिए मानव को संतोष रखते हुए नए उत्तम कर्मों में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

प्रभु कितने अधिक मननशील हैं, इसको दर्शाने के लिए आगे इसी श्लोक में ऋषि ने कहा- **'नान्योऽतोऽस्ति मन्ता'** इस ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई मनन करने वाला नहीं है। सर्वाधिकता को बताने के लिए इस प्रकार का कथन व्यवहार में किया जाता है, जैसे योद्धा तो अर्जुन ही है और कोई नहीं। ऋषि का तात्पर्य है कि ईश्वर जितना सूक्ष्मतम विश्लेषण करता है उतना कोई नहीं कर सकता। अतः ईश्वर की कृति में यदि हमें कुछ असंगत भी लगे तब यही मानना चाहिए कि ये ईश्वर ने मननपूर्वक ही किया है जो मुझ अल्पमति को अभी समझ नहीं आ रहा है। इस प्रकार नास्तिकता से बचते हुए स्वयं में और अधिक आस्तिकता का भाव दृढ़ करना चाहिए, इसी में कल्याण है। **असन्नेव स भवति। असद् ब्रह्मेति वेद चेत्** (तैत्ति. ब्र. ६)।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के ६/११वें श्लोक में ईश्वर को 'कर्माध्यक्ष' पद से विभूषित किया है। कर्म-कर्त्ता तो जीव ही है, पर कर्मों का अध्यक्ष-अधीक्षक निरीक्षक ईश्वर है इसलिए उसे इसी श्लोक में साक्षी कहा है। श्लोक का प्रथम पद **'एकः'** कर्माध्यक्ष का विशेषण है।

कर्माध्यक्ष एक ही है वह ईश्वर ही कर्मफल व्यवस्था को करता है अन्य कोई नहीं। यद्यपि कुछ स्थूल कर्मों जैसे चोरी का फल राजा आदि भी दे देते हैं, पर तब भी अन्तिम न्याय तो ईश्वर ही करता है, राजादि के न्यूनाधिक फल देने पर उसकी पूर्ति ईश्वर ही करता है। ईश्वर द्वारा फल दे दिए जाने पर कर्मों का फल दोबारा नहीं मिलता।

असंख्य जीव असीमित स्थान में फैले हुए अनगिनत कर्म कर रहे हैं, इसलिए सबके सब कर्मों का निरीक्षक अवश्य

ही अनेक असाधारण योग्यताओं से युक्त होना चाहिए। ईश्वर की वे कुछ मुख्य योग्यताएं भी इसी श्लोक में बताई हैं। जिनके कारण वह कर्माध्यक्ष दायित्व का निर्वहन सहजता से न्यायोचित करता है। श्लोक में कहा; **सर्वभूतेषु गूढः** - कर्माध्यक्ष सब प्राणियों में व्याप्त है, सर्वव्यापी सब स्थानों में व्याप्त है, सर्वभूतान्तरात्मा- अंतर्यामी है, सर्वभूताधिवासः - सबका आधार है अर्थात् सब उसके नियंत्रण में हैं, साक्षी- सबका यथार्थ द्रष्टा है, चेता- ज्ञानस्वरूप है, चेतन है, कैमरे की तरह जड़ निरीक्षक नहीं है, केवलः - अकेला है, **निर्गुणश्च** और सत्व रज तम से रहित है, अतः पवित्र निर्मल है, राग-द्वेषादि से रहित है।

इन आर्ष ११ उपनिषदों में ईश्वर के शताधिक नाम आए हैं, जो सभी सार्थक हैं, ईश्वर की विशेषताओं को संकेतित करने वाले हैं। जिन नामों से हम ईश्वर के सही स्वरूप को समझकर ईश्वर विषयक मिथ्या मान्यताओं से बच जाते हैं और ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ईश्वर की महानता को समझने से ईश्वर ही के अनुकूल जीवन जीने की समझ विकसित होती है तब जीवन में सुख ही सुख है, जीवन के बाद भी सुख ही सुख है- **यस्य छायाऽमृतम्** (यजु. २५/१३)।।

आर्ष गुरुकुल, वानप्रस्थ साधक आश्रम,
रोजड़, गुजरात।

परोपकारी ग्राहकों हेतु आवश्यक सूचना

परोपकारी के अनेक सदस्यों की यह शिकायत रहती है कि उन्हें पत्रिका प्राप्त नहीं हो रही है। रजिस्टर्ड डाक से पत्रिका भेजने पर डाक व्यय बढ़ जाता है। सदस्यों से निवेदन है कि जो रजिस्टर्ड डाक से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं, वह निम्नानुसार डाक व्यय सभा के खाते में अग्रिम रूप से जमा करके कार्यालय को सूचित कर दें। रजिस्टर्ड डाक का व्यय (पत्रिका शुल्क के अतिरिक्त) निम्न प्रकार है-

१. प्रत्येक अंक (वर्ष भर २४ अंक) रजिस्टर्ड डाक से मंगाने पर - डाक व्यय - १०००/-

२. एक मास के दो अंक- एक साथ मंगाने पर वार्षिक - डाक व्यय - ५००/-

३. एक वर्ष के २४ अंक- एक साथ मंगाने पर - डाक व्यय - १००/-

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

ज्ञानसूक्त - ०७

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

सक्तुमिव तितउना पुनन्तु यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

हम ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ७१वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। हमारी चर्चा का प्रसंग वेदज्ञान की गंगा के अन्दर अवगाहन करने का है, उसके जो विशेष सन्दर्भ हैं, भाव हैं उनको जानने का है। यह सूक्त महत्त्वपूर्ण इसलिए है, क्योंकि इस सूक्त में ज्ञान की चर्चा है। ज्ञान हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है, यह मनुष्य मात्र जानता है। हमारे प्रत्येक हानि-लाभ, अच्छाई-बुराई, हित-अहित सब कुछ हमारे ज्ञान पर निर्भर करता है। समाज में इसीलिए ज्ञान की प्रतिष्ठा होती है और वह ज्ञान और उसका स्रोत वेद है, क्योंकि ईश्वर ज्ञान का आदि स्रोत है और वेद ईश्वरीय ज्ञान है, ईश्वर की रचना है इसलिए हमें ज्ञान की प्राप्ति के लिए वेद तक जाना होगा। इस बात को समझने के लिए एक सन्दर्भ हम काम में ले सकते हैं। वैदिक साहित्य में एक प्रमुख नाम आचार्य यास्क का है और उनका महत्त्व इसलिए अधिक है कि जब हम वेद की बात करते हैं, वेद को जानने की बात करते हैं तो जानने के उपाय के रूप में, रास्ते के रूप में, शैली पद्धति के रूप में, जो नाम प्रमुख रूप से हमारे सामने आता है, वो यास्क का है। यास्क, वेद पढ़ने-पढ़ाने वालों के लिए एक मार्गदर्शक का काम करते हैं। उनका जो ग्रन्थ है, 'निरुक्त' यद्यपि वह व्याख्या ग्रन्थ है, किन्तु मूल से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है और वेदांगों के रूप में मूल ग्रन्थ 'निघण्टु' की चर्चा नहीं होती, बल्कि निघण्टु की जो व्याख्या है, निरुक्त उसकी चर्चा होती है, उसका नाम आता है। यह निरुक्त आचार्य यास्क की रचना है। इसका प्रमुख जो उद्देश्य है, वो वेदार्थ का परिचय है, वेद मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान है। जब यास्क कहते हैं कि मैं वेद-मन्त्रों के अर्थ को बताना चाहता हूँ इसलिए इस ग्रन्थ की रचना कर रहा हूँ, तब वे एक और बात भी कहते हैं कि मनुष्य को ज्ञानवान् होना चाहिए और ज्ञानवान् होने के लिए निरुक्त पढ़ना बहुत आवश्यक है। निरुक्त के २-३ सन्दर्भ जो ज्ञान से जुड़े हुए हैं वे इस वेद के और हमारे बीच के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हैं। आचार्य यास्क ने लिखा कि निरुक्त क्यों पढ़ना चाहिए- '**अथापि इदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थ प्रत्ययो न विद्यतेऽर्थमप्रतीयतो नात्यन्तं स्वर संस्कारोद्देशः। तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यम् स्वार्थ साधकं च।**' प्रत्यय कहते हैं ज्ञान को। आचार्य यास्क का मानना और कहना है कि यदि आपने निरुक्त का अध्ययन नहीं किया है, निरुक्त को नहीं समझा है, तो आप वेदमन्त्र के अर्थ को जानने में समर्थ नहीं हो सकते। अब इससे बड़ा महत्त्व इससे ज्यादा बड़ी बात वेद के लिए यास्क और क्या कह सकते हैं। इससे यास्क का ग्रन्थ और उनकी जो धारणा है, उसके प्रति उनका जो कथन है, वो उनकी योग्यता को भी और उनके वेदार्थ ज्ञान की सहायता को भी भली-भाँति प्रकाशित करता है उन्होंने कहा कि इस निरुक्त के अध्ययन के बिना वेदार्थ की प्रतीति नहीं हो पाएगी और यदि आप अर्थ

नहीं जानते तो उसका आप उपयोग कैसे करेंगे उसका लाभ कैसे उठायेंगे- **अर्थमप्रतीयतः नात्यन्तं स्वर संस्कारोद्देशः**। हमारे यहाँ भाषा के साथ एक बड़ी रोचक चीज़ है जो हमें ध्यान रखनी चाहिए। हम बिना अर्थ ज्ञान के वाक्य को समझ नहीं सकते और वाक्य जानने के बाद अर्थ समझ में आता है। यह दो विचित्र परिस्थितियाँ हैं। मतलब हम अर्थ पहले जानते हैं या शब्द पहले जानते हैं। हम केवल शब्द पढ़ें और हमें अर्थ की प्रतीति न हो, तो वे शब्द हमें कोई लाभ नहीं दे सकते और अर्थ हमें पहले से मालूम है, तो शब्द पढ़ने की आवश्यकता क्या है? लेकिन ये दोनों चीजें साथ-साथ चलती हैं। हमें शब्द की विभक्ति का पता है तो अर्थ लगाना आसान हो जाता है। हमें शब्द की धातु मालूम है तो अर्थ करना बहुत आसान हो जाता है। तो धातु का अर्थ तो हमें पहले से मालूम है, विभक्ति की प्रतीति हमें मालूम है। हम कौन सा वचन, कौनसा पुरुष काम में ले रहे हैं हमें पता है, तब मन्त्र पढ़ते है तो अर्थ आसानी से समझ में आ जाता है। तो अर्थ की कुछ बात यदि हमें पता नहीं है, तो उसका जो शुद्ध और ठीक अर्थ है वह भी पता नहीं होगा। तो इस दृष्टि से अर्थ और शब्द के बीच में एक निरन्तर सम्बन्ध चलता है। शब्द पढ़ते हैं अर्थ की पुष्टि होती है, नए अर्थ की प्रतीति होती है। अर्थ की प्रतीति से शब्द का समझ में आना और शब्द के समझ में आने से अर्थ की पुष्टि होना, यह जो भाषा का क्रम है, यह हमें आगे बढ़ाता है। इसलिए यहाँ यास्क ने जो बात लिखी है- **अर्थमप्रतीयतो नात्यन्तं स्वर संस्कारोद्देशः**- यदि मुझे अर्थ की प्रतीति नहीं है तो मैं उसमें विभक्ति नहीं लगा सकता, मैं उसका वचन नहीं निकाल सकता मैं उसका उचित अर्थ नहीं कर सकता। इसलिए अर्थ का ज्ञान मुझे होना चाहिए। इसलिए उन्होंने कहा- **तदिदं विद्यास्थानम् व्याकरणस्य कार्त्स्न्यम् स्वार्थ साधकं च**। तीन विचित्र बातें कहते हैं, यह ज्ञान का, विद्या का स्थान है, केन्द्र है, आधार है। अर्थात् यदि कोई विद्वान् बनना चाहता है, वेद का विद्वान् बनना चाहता है, वेदार्थ को समझना, जानना चाहता है, तो वह निरुक्त के बिना नहीं हो सकता। **तदिदं विद्यास्थानम्**। और दूसरी जो बात कहते हैं- सामान्य रूप से हम जो भाषा जानते हैं, पढ़ते हैं, सीखते हैं, तो हम इस भाषा को सीखने के लिए व्याकरण को महत्त्व देते हैं कि हम व्याकरण सीख लेंगे तो भाषा आ जाएगी। लेकिन हम एक बात भूल जाते हैं कि भाषा आ जाएगी। लेकिन भाषा व्याकरण से नहीं आती, भाषा व्याकरण से समझी जाती है। उसकी जो रचना है, वही व्याकरण से समझते हैं और वैसा बनाने का यत्न करते हैं। वास्तव में जो व्यवहार है, प्रयोग है, सीधे अर्थ की प्रतीति से है। इसीलिए उन्होंने कहा- **तदिदं विद्यास्थानम् व्याकरणस्य कार्त्स्न्यम्** अर्थात् जहाँ जाकर व्याकरण की सीमायें समाप्त हो जती है अर्थ बताने में, वहाँ से निरुक्त का क्षेत्र प्रारम्भ होता है अर्थ के निर्णय में। तो अर्थ का जो निर्णय करना है, तो व्याकरण से सम्भव है, तो करेंगे। लेकिन व्याकरण से सम्भव नहीं है, कम सम्भव है, तब हम निरुक्त से करेंगे। इसलिए कहा, **व्याकरणस्य कार्त्स्न्यम्** अर्थात् यह व्याकरण की समग्रता है। यहाँ भिन्न नहीं है, विरोध नहीं है। अर्थात् जहाँ किसी शास्त्र का जो कार्य है समाप्त होता है, वहाँ से दूसरे शास्त्र का कार्य प्रारम्भ होता है। तो यह स्वार्थ साधकं अर्थात् वेद के मन्त्रों का अर्थ बताना। वेद के अर्थ बताने के सन्दर्भ में निरुक्त में एक बात लिखी कि आदमी का विद्वान् होना, ज्ञानवान् होना, बुद्धिमान् होना बहुत आवश्यक है। वह बुद्धिमत्ता, ज्ञान निरुक्त के बिना नहीं आ सकता। उन्होंने कहा है कि सामान्य समाज में एक विचित्रता होती है कि सब लोग सब कुछ नहीं जानते। जो जानते हैं उनका मूल्य होता है। वो समाज में मार्गदर्शक होते हैं, निर्णायक होते हैं। उनके निर्देशन में चलना सुखदायक होता है, लाभदायक होता है। तो कहा कि ज्ञानी बनना है तो आपको वेद पढ़ना होगा और वेद पढ़ने के लिए निरुक्त पढ़ना होगा। तो ज्ञानी बनना यह हमारे जीवन की महत्त्वपूर्ण बात है और वो वेद पढ़े बिना बना नहीं जा सकता। जो चीज आप करना चाहते हैं, जिस तरह से करना चाहते हैं, जिस माध्यम से करना चाहते हैं, उस के बारे में आपकी यथोचित जानकारी होनी चाहिए। अर्थात् क्या करने से क्या होने वाला है, कौनसी

वस्तु से सिद्ध होने वाला है, यह बात हमें पता होनी चाहिए और यह वेद कहता है।

हमने दूसरे मन्त्र की चर्चा प्रारम्भ की थी। वह मन्त्र था **'स्वतुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।'** हमारे पास जब कोई चीज़ आती है, तो हम उसे मन की छलनी से छानते हैं और उसमें जो काम की है उसे ले लेते हैं और जो बिना काम की है उसे छोड़ देते हैं। तो वहाँ एक विशेष वाक्य, एक विशेष क्रिया है, वौ हे 'अक्रत' और कैसे 'मनसा' अर्थात् यह जो छानने का काम है, चुनने का काम है, विवेक का काम है, यह मन से करते हैं, बुद्धि से करते हैं। तो यह करने की चीज़ है अपने आप होने की चीज़ नहीं है। इसके लिए यत्न करना पड़ेगा। आपको जानना पड़ेगा, विवेचन करना पड़ेगा, विश्लेषण करना पड़ेगा, संकल्प करना पड़ेगा। तो मनसा वाचमक्रत।

अत्र सखाय: सख्यानि जानते और उसकी कसौटी बतायी कि जो मित्र है, वो उस मित्र की बात को जानता और समझता है। अब यहाँ एक विशेष शब्द का प्रयोग है **'सखाय: सख्यानि जानते'** अब यहाँ और किसी शब्द का भी उपयोग हो सकता था, लेकिन भाषा में एक विशेषता होती है कि हजार शब्द हमारे सामने होते हैं और हम कौन से शब्द का प्रयोग करते हैं इससे हमारी विद्वत्ता का, हमारी योग्यता का पता लगता है। बात तो कालिदास भी कहता और बात हम भी कहते हैं। बात वेद में भी कही गयी है, बात दूसरे लोग भी कह रहे हैं। हो सकता है हमारा भाव बहुत मिलता-जुलता भी हो। तो फिर हमारे शब्दों का मूल्य क्यूँ न हो? वेद का ही मूल्य व महत्त्व क्यूँ हो? लौकिक रचना में कालिदास ही हमसे विशेष क्यूँ बन जाए? इसकी एक कसौटी है- एक तो जो बात हम अपने मन में सोचते हैं, व्यक्त नहीं कर पाते। अनुभव से जानते-मानते हैं लेकिन कह नहीं पाते। उनको जब कोई व्यक्ति यदि शब्द दे देता है, तो हमें ऐसा लगता है जैसे इसने मेरी मन की बात कही है, इसने मेरी ही बात कही है। हसे हम कहते हैं, जैसे मुँह की बात छीन ली है। जब कोई मेरे हृदय की बात कहता हुआ दिखाई देता है तो वह मुझे बिल्कुल अपना लगता है। उसके साथ मेरी आत्मीयता हो जाती है। तो मुझे वो कवि, वो व्याख्याता, वो वक्ता, नेता, वो व्यक्ति पसन्द आता है, उसको मानता हूँ, योग्य समझता हूँ जो मेरे मन की, हृदय की बुद्धि की बात को कहता हो। वो जो कहना और समझना है उसके लिए उनका धरातल एक चाहिए, उनकी योग्यता एक चाहिए। अर्थात् मेरा जो मानसिक धरातल है, अनुभूति है, उस अनुभूति के स्तर को कोई पकड़ने वाला, समझने वाला चाहिए। इसलिए यहाँ एक शब्द 'सखा' प्रयोग किया है। **'समानम् ख्यानम् ऐषाम्।'** जो ख्यानम् विचार है, ज्ञान है, अनुभव है जिनका समान है, जो उस योग्यता के हैं, वही उस बात को समझ सकते हैं।

तो यहाँ जो बात कही है, वो जो वाणी व्यक्ति बोल रहा है, एक विद्वान् जो वाणी को बोल रहा है, उस वाणी के महत्त्व को, योग्यता को समझते कौन हैं- सखाय:। ऐसे लोग जिनका समानम् ख्यानम् है। समान सोच है, समान विचार है समान योगयता है और उसको जो समझना है, उसे समझने के लिए- हर व्यक्ति हर कुछ बोल रहा है, लेकिन हमने कहा कि वो विवेक करके बोल रहा है और जो विवेक से, विवेचन, विश्लेषण करके बता रहा है उसको समझने की भी सबमें योग्यता हो, यह अनिवार्य नहीं है। इसलिए यहाँ पर कहा- अत्र सखाय: सख्यानि जानते। अर्थात् ऐसे व्यक्ति जो उपदेश दे रहा है, जो व्याखान, मार्गदर्शन कर रहा हे, उसको वो लोग बहुत सहज भाव से स्वीकार कर लेते हैं, समझ लेते हैं जो उसके स्तर के होते हैं। इसमें एक और रोचक कसौटी है, कहता है, **'भद्रैषां लक्ष्मार्निहिताधि वाचि।'** जो विद्वान् व्यक्ति है उस व्यक्ति की वाणी में दो बातें होती हैं। उनकी वाणी किसी का बुरा करने के लिए नहीं होती। वो सबका कल्याण करने के लिए होती है, उसकी उन्नति के लिए होती है इसलिए कहा है कि जो विद्वान् व्यक्ति है वही इसको कह सकता है और वह विद्वत्ता वेदों से, मन्त्रों से, ज्ञान से आती है।

भिन्न गुणों एवं प्रभावों की अग्नियाँ-सत्यार्थप्रकाश के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. राकेश सत्यदेव

ऋषि दयानन्द जी विज्ञान के ज्ञान को बहुत अधिक महत्त्व देते थे। कोई भी तथ्य जो तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरा न उतरे उसे वह स्वीकार नहीं करते। तर्क और विज्ञान की कसौटी पर जो खरा उतरे वही उन्हें स्वीकार्य था।

ऋषि दयानन्द प्रगतिवादी थे। सत्यार्थप्रकाश में कई कई प्रश्नों के उत्तर के साक्ष्य में पदार्थ विद्या अर्थात् विज्ञान के तथ्यों को लिखा है, क्योंकि यह सत्य की एक विश्वसनीय कसौटी है। प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वाधिक विश्वसनीय कसौटी है। **''सत्यम् किम् प्रमाणम्, प्रत्यक्षम् किम् प्रमाणम्।''**

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में अपने उत्तरों के पक्ष में प्रत्यक्ष प्रमाण के तथ्यों को सर्वाधिक लिखा है। हम विज्ञान के ज्ञान को उत्तरोत्तर वृद्धि कर, नये-नये सत्य तथ्यों एवं उपकरणों आदि का अविष्कार कर रहे हैं। पाठकों के संज्ञानार्थ, पुस्तक सत्यार्थप्रकाश, शोधकर्त्ता, समीक्षक, सम्पादक एवं भाष्यकार, डॉ. सुरेन्द्र कुमार, प्रकाशक आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक, सत्य धर्म प्रकाशन संस्करण वि. संवत् सन् २०७१, सन् २०१४ ई. में प्रकाशित में लिखे विभिन्न समुल्लासों एवं पृष्ठों में विभिन्न गुणों एवं प्रभावों की अग्नियों के तथ्यों को लिखा है। इस लेख को अग्नियों एवं विज्ञान की महत्ता दर्शाने को लिखा है। अन्य प्रकाशकों एवं संस्करणों में भिन्न पृष्ठ नम्बर हो सकते हैं।

(१) समुल्लास-३ में- एक प्रश्न कि होम या यज्ञ से क्या लाभ है? इसके प्रत्युत्तर में ऋषि ने लिखा है ''जो तुम ''पदार्थविद्या'' जानते तो कभी ऐसी बात न कहते; क्योंकि (विज्ञान कहता है) किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो, जहाँ होम होता है, वहाँ से दूर देश में स्थित मनुष्य की नासिका से जैसे सुगन्ध का ग्रहण होता है, वैसे ही दुर्गंध का भी। अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैल के, वायु के साथ दूर देश में जाकर, दुर्गंध की निवृत्ति करता है।'' इसमें केवल शब्द अग्नि ही लिखा है। जबकि हम दो तरह की अग्नियों का उपयोग करते हैं। प्रथम 'ज्वालायुक्त अग्नि' जिसमें घटती बढ़ती ज्वालायें, लपटें उठती रहती हैं जिसमें अत्यधिक आँच होती हैं। दूसरी ''ज्वालारहित अग्नि'' जिसमें ज्वालायें लपटें नगण्य अथवा नही होती हैं, जिसमें आँच मध्यम से निम्न होती हैं या वह रक्ततप्त (Red hot) होती है। हमें प्रयोगों द्वारा यह निर्धारित करना है कि प्रत्यक्ष में कार्य के ध्येय, लक्ष्य के अनुसार किस प्रकार की अग्नि का कब- कब उपयोग करना है। इसको विज्ञान के आधार पर भी अध्ययन करना होगा।

प्रत्यक्ष प्रमाण में जब हम लकड़ियों अथवा गैस के चूल्हे की ज्वालायुक्त अग्नि में जब कोई भी सुगंधित, दुर्गन्धित, तीक्ष्ण, मिष्ठ, लालमिर्च, कपड़ा, चमड़ा, प्लास्टिक, जहरीली जड़ी-बूटियों, जहर अमृत आदि कुछ डालते तब इन पदार्थों के नगण्य गंध अर्थात् क्रमशः नगण्य सुगन्ध, नगण्य दुर्गन्ध ही हवा में फैलते हैं और अधिकांश रंगहीन, गंधहीन गैसें ही हवा में फैलती है। ज्वालायें घटती बढ़ती रहती है। ऐसा पदार्थों के ज्वलन होने के कारण होता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण में जब हम कोयला, कंडा आदि की रक्ततप्त 'ज्वालारहित अग्नि' में जब कोई भी सुगन्धित, दुर्गन्धित, तीक्ष्ण, मिष्ठ, लालमिर्च, कपड़ा, चमड़ा, प्लास्टिक, जहरीली जड़ी बूटियों, जहर, अमृत आदि कुछ भी पदार्थ डालते हैं तो उन पदार्थों के गुण वाष्प के रूप में मूल गुणों के करोड़ गुना बढ़कर ही हवा में फैल जाते हैं। ऐसा पदार्थों के वाष्पन होने पर होता है। लाभदायक पदार्थों के वाष्प की रसायनें समस्त मनुष्यों,

जानवरों, पशु-पक्षियों को श्वास लेने पर नासिकाओं से सभी को एक समान ग्रहण होकर विभिन्न लाभ देते हैं और हानिकारक पदार्थों के वाष्प हानिकारक होते हैं।

जब कोई पदार्थ रक्ततप्त अग्नि में डाला जाता है और उसका शनैः-शनैः दहन होता है तो वह अत्यंत सूक्ष्म होकर गैस रूप में आ जाता है, क्योंकि धूम्र वाष्प के रूप में वह पदार्थ वायु में तेजी से फैलता है।

(२) समुल्लास-४ में- सत्यार्थप्रकाश के समुल्लास ४ में वर्णित ''चौथा वैश्वदेव- अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़ के घृत-मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि को अलग करके निम्नलिखित मंत्रों से आहुतियां और भाग करे।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहाऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्य्याद्दवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्।।

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश को लगभग १५० वर्ष पूर्व लिखा था। उस समय चूल्हों में लकड़ी अथवा कंडा (उपला) ही जलाया जाता था। चूल्हे की अग्नि जिसे अलग धरा या अलग रखा जा सकता है, वह कोयला या कंडा की ही अग्नि होती है। इस रक्ततप्त अग्नि में आहुति के पदार्थों का दहन, ज्वलन नहीं होता अपितु वाष्पन होता है। मात्र अवशेष कोयला अर्थात् कार्बन का ही दहन, ज्वलन होता है।

(३) समुल्लास-१०- के तृतीय अथवा चतुर्थ पृष्ठ में लिखा है,

''न जातुकामः कामानमुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।। ३।।

अर्थात् 'यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है, वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता, किन्तु बढ़ता जाता है। इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये।। ३।। इस उदाहरण को प्रत्यक्ष में स्वयं देखने, अनुभूति करने हेतु यदि, हम घी, अथवा किसी अन्य इन्धन को ज्वालायुक्त अग्नि में धीरे-धीरे डालें, तब देखेगें कि अग्नि की ज्वालायें ही बढ़ती रहती हैं। अब हम ऋषि के इस उदाहरण को मनुष्यों की सोच विचार और कर्मों पर देखते हैं तो उत्तेजना, उद्वेग, आवेग के कर्म=जैसे- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, द्वेष एवम् अन्य सभी बुरे विचारों, प्रवृतियों में उद्यत, लिप्त, लगे रहने से, यह बुराइयां, भावनाएं, लालसायें, प्रवृतियां लगातार बढ़ती ही जाती हैं, जब तक इनको रोका नहीं जाता है।

अब हम ऋषि के इस उदाहरण को पुनः घी अथवा किसी अन्य इन्धन को दूसरे प्रकार की 'ज्वालारहित अग्नि' जैसे कोयला या कंडा की अग्नि जिसमें ज्वालायें नहीं होती हैं, में डालते हैं, तब यह घी अथवा ईंधन ही बढ़ते हैं और बढ़ते- बढ़ते वाष्प बन कर, जिनमें इनके सुगन्ध आदि सभी गुण बढ़ते जाते हैं, अर्थात् पदार्थ के सभी मूल गुण सहस्त्र गुना बढ़कर हवा में चारों ओर फैलकर, मूल गुणों के साथ हज़ारों प्राणियों को ग्रहण होते हैं। इसी प्रकार प्राणायाम, ध्यान, योग एवं पर उपकार में मन, विचार, भावनायें लगाने पर, हमारे मन में शांत, सर्वानन्ददायक प्रवृतियां, लालसायें, विचार बढ़ते जाते हैं, जिससे मन में शांति, प्रसन्नता शारीरिक एवं मानसिक शक्ति बढ़ती जाती है।

सारांश में घी इन्धन का प्रचण्ड विध्वंसक अग्नि से मेल सम्पर्क कराने पर इन्धन की भी विध्वंसक यानी भस्म करने की शक्ति बढ़ती जाती है। वैसे ही घी, ईंधन की शांत अग्नियों से सम्पर्क, मेल कराने पर यह सहस्त्र गुना वाष्प अर्थात् वायुरूप में बढ़कर चतुर्दिक् सुगन्ध, औषधीय लाभ देती हैं।

(४) समुल्लास-११ में- 'प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करता है- ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है, सबको खा जाती है और प्रसाद देवे तो आधा खा जाती और आधा छोड़ देती है।'' इसके प्रत्युत्तर में ऋषि लिखते हैं- 'नहीं; क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़ में से अग्नि निकलती है। उसमें

पुजारी पोपों की विचित्र लीला है। जैसे बघार के घी के चमचे में ज्वाला आ जाती, अलग करने से वा फूँक मारने से बुझ जाती, थोड़े से घी को खा जाती, शेष छोड़ जाती; उसी के समान वहाँ भी है। जैसे चूल्हे की ज्वाला में जो डाला जाय, वह सब भस्म हो जाता है, वैसे जंगल वा घर में आग लग जाने से सबको खा जाती है।''

बघार, चूल्हे, जंगल, घरों आदि में लगी अग्नियां 'ज्वालायुक्त' अत्यधिक आँच अर्थात् तापमान की होती है। जो विध्वसंक अर्थात् पदार्थों के मूल रसायनों के रूप एवं गुणों का विनाश, छिन्न-भिन्न विखण्डित भस्म कर मुख्यतया प्रत्यक्ष अनुभूति में गंधहीन, रगहीन, स्वादहीन गैसों के रूप में वायु में बदलकर फैलती हैं। विज्ञान के अनुसार दहन के फलस्वरूप वायु में कार्बन डाईऑक्साइड गैस, थोड़ा जल वाष्परूप में एवं ऊर्जा यानी गर्मी ज्वालाओं के रूप में फैलती हैं।

यहाँ ऋषि ने अग्नि की ज्वालाओं के गुण एवं प्रभाव को स्पष्ट रूप से लिखा है कि दहन, भस्म होने पर पदार्थों के गुण एवं प्रभाव का विनाश, विध्वंस हो जाते हैं। बघार बनाने में मध्यम, निम्न आँच के प्रभाव में पदार्थों के गुण बढ़ते जाते हैं। तभी तो बघार लगाने के बाद दाल आदि के स्वाद, सुगंध लाभ आदि कई गुना बढ़ जाते हैं, जबकि ज्वालाओं के आते ही सब कुछ विलुप्त, विध्वंस होने लगते हैं।

(५) समुल्लास-१२ में- बाहर के वायु के योग के बिना मनुष्य प्राणी आदि जीवित नहीं रह सकते, इस सन्दर्भ में प्रश्नकर्त्ता कहता है, ''जैसे बन्ध मकान में जलाए हुए अग्नि की ज्वाला बाहर निकल के बाहर के जीवों को दुःख नहीं पहुंचा सकती, वैसे ही हम मुख पर पट्टी बांध के वायु को रोक कर बाहर के जीवों को न्यून दुःख पहुंचाने वाले हैं।''

इस प्रश्न के उत्तर में ऋषि कहते हैं ''यह तुम्हारी बात लड़केपन की है। प्रथम तो देखो, जहाँ छिद्र और भीतर के वायु का योग बाहर के वायु के साथ न हो तो यहाँ अग्नि जल ही नहीं सकता। जो इसको प्रत्यक्ष देखना चाहो तो किसी फानूस में दीप जलाकर सब छिद्र बंध करके देखो तो दीप उसी समय बुझ जायगा। जैसे पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यादि प्राणी बाहिर के वायु के योग के बिना नहीं जी सकते, वैसे अग्नि भी नहीं जल सकता। इससे विदित होता है कि स्वामी दयानन्द जी विज्ञान एवं प्रत्यक्ष प्रमाण में प्रयोगों आदि के द्वारा, यह जानते थे कि कोई पदार्थ बगैर हवा के दहन नहीं हो सकता है, ठीक वैसे ही समस्त प्राणी भी बगैर हवा के जीवित नहीं रह सकते हैं।

फानूसों, लालटेनों, पेट्रोमैक्सों आदि में हवा के अंदर घुसने के लिए नीचे कई छोटे-छोटे छिद्र तथा दहन के पश्चात् दूषित हवा अर्थात् कार्बन डाइऑक्साइड आदि गर्म हवा के बाहर निकलने के लिए ऊपर छोटे-छोटे छिद्र होना अत्यावश्यक है, अन्यथा इन उपकरणों में इन्धन का दहन नहीं हो सकेगा जिससे प्रकाशादि नहीं हो सकता, तथा कार्बन डाइऑक्साइड का प्रशस्त मात्रा में निर्माण होने से वह बुझ जाता है। स्वामी दयानन्द जी ने इसी कारण अग्नि को महिमामण्डित करने वाली बातों को कहीं नहीं लिखा है।

सत्यार्थप्रकाश के विभिन्न समुल्लासों में अग्नियों के गुण एवं प्रभाव के उपरोक्त विवरणों से निम्न निष्कर्ष निकलता है।

समुल्लास ३,१०,११ एवं १२ में लिखे के अनुसार-

(१) ज्वालायुक्त अग्नि में जो-जो पदार्थ डाले जाते हैं। वह सब दहन होकर भस्म, विध्वंस हो जाते हैं।

(२) ज्वालायुक्त अग्नि के लिए बाहर की हवा का उपयोग होना अपरिहार्य है और दहन होने के उपरान्त, वह सब दूषित वायु में परिवर्तित होकर, हवा में फैल कर मिल जाते हैं। यह क्रिया मनुष्यों एवं समस्त प्राणियों द्वारा सांस लेने के समान है, क्योंकि इसमें समस्त प्राणी द्वारा शुद्ध वायु सांसों के द्वारा लिया जाता है और सांसों द्वारा छोड़ते समय वह सब दहन होने के उपरान्त अशुद्ध

हवा वातावरण में छोड़ते हैं, जिससे वायुमण्डल दूषित होता है। इस प्रकार पदार्थों के दहन एवं प्राणियों के सांस लेने से हवा अर्थात् पर्यावरण दूषित होता है।

(३) समुल्लास ४,१० एवं ११ में लिखे के अनुसार 'ज्वालारहित अग्नि में डाले गए पदार्थों का दहन नहीं होता है, बल्कि वाष्पन होता है। ज्वालारहित अग्नि से केवल उतने ही पदार्थों से ही वायु दूषित होता है, जितने भाग का दहन होता है। जितने भाग का वाष्पन होता है, उससे ही हमें डाले गये पदार्थों के भरपूर सुगन्ध औषधीय, पुष्टकारक आदि लाभ मिलते हैं।

यदि हम ज्वालारहित अग्नि के अन्य विकल्प जैसे विद्युत् हीटर, विद्युत इंडक्शन प्लेट, सोलर हीटर आदि का उपयोग करते हैं, तो इन पर डाले गए पदार्थों के उड़नशील भाग के केवल वाष्प ही हवा में बनकर फैलते हैं। इसमें कुछ भी दहन नहीं होता है। अतः इससे वातावरण लेश मात्र भी प्रदूषित नहीं होता है।

उपरोक्त लिखे तथ्यों से विदित होता है कि स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के विभिन्न समुल्लासों में भिन्न-भिन्न अग्नियों के भिन्न-भिन्न गुणों एवं प्रभाव को लिखा है, जिन्हें हम अपने घर में ही प्रयोगों द्वारा सत्यापित कर सकते हैं। सत्यार्थप्रकाश में दोनों प्रकार के वर्णित अग्नियों के उपरोक्त तथ्यों को आधुनिक विज्ञान के आधार पर की गयी तुलना करने पर, हम पाते हैं कि ऋषि के विचार पूर्णतः विज्ञान सम्मत हैं। हम यह देखते हैं कि ऋषि ने अपने मत को सत्य सिद्ध करने के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण के बाद, विज्ञान सम्मत तथ्य को ही सर्वोच्च, सशक्त एवं अकाट्य कसौटी लिखा है।

अतः हम सभी को विज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करना चाहिये एवं सभी आर्य नवयुवकों को वेद आदि शास्त्रों के साथ ही विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये, जिससे वह समाज कि हर आवश्यक क्षेत्र में सेवा कर सकें।

इस आलेख में वर्णित तथ्यों पर प्रश्नों, शंकाओं हेतु पाठकवृन्द, विद्वत्गण की स्वस्थ अपूर्वाग्रही आलोचनाओं का स्वागत है।

मो.- ८००५३६१९४२

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय का पुनः आरम्भ २६ अगस्त को किया गया है। यह चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें। **- मन्त्री**

आभूषण

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नादि से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं होता क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। **सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास**

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्य पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु
खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA , AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक,
कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

आनन्द

जिस परमात्मा का यह 'ओ३म्' नाम है उसकी कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ ये हमारे शरीर, मन और आत्मा का विविध दु:ख जोकि अपने [से] दूसरे से होता है, नष्ट हो जावे और हम लोग प्राप्ति से एक-दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि से सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सब को आनन्द में रखें।

- संस्कार विधि

संस्था समाचार

आचार्य ज्ञानचन्द

प्रात: काल का यज्ञ, वेद पाठ व वेद स्वाध्याय ब्र. आकाश तथा सायं काल का यज्ञ व संध्या ब्र. वेदव्रत के द्वारा कराया जा रहा है। प्रात: यज्ञोपरान्त प्रवचन के क्रम में आचार्य कर्मवीर ने बताया कि मुण्डक उपनिषद् में बताया कि वह ईश्वर न आंखों से न वाणी से न ही अन्य इन्द्रियों जाना जाता है। इसके साथ ही वहाँ कहा गया कि वह ईश्वर तप से भी गृहीत नहीं होता। लेकिन योग दर्शन में ईश्वर की प्राप्ति के लिए तप एक साधन के रूप में कहा गया है। जो लोग तप का मतलब शरीर, इन्द्रियों को अति कष्ट देकर ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं। इस प्रकार तप करने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होगी।कुछ लोग एक पैर पर लम्बे काल तक पर खड़े रहते हैं। कुछ एक हाथ अपना ऊपर उठा लेते हैं। कुछ गर्दन तक जमीन में घुस जाते हैं। कुछ ज्येष्ठ के महीने में चारों ओर अग्नि जलाकर बीच में बैठ जाते हैं। इन तपो से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। तप उतना ही करना चाहिए जितने में शरीर और इन्द्रियों में विकार न हो,मन की प्रसन्नता भी बनी रहे ऐसा तप करना चाहिए। इससे शारीरिक तथा मानसिक सामर्थ्य बढ़ता है। अच्छी दिनचर्या, नियमित व्यायाम, खानपान में संयम इन सब के द्वारा शरीर को निरोगी रखा जा सकता है। ऐसा तप हमें करना चाहिए।

आचार्य शक्तिनन्दन ने गीता के दूसरे अध्याय के श्लोकों के आधार पर बताया कि कृष्ण अर्जुन को समझ रहे हैं कि यदि तुम ऐसा मानते हैं कि शरीर के साथ ही आत्मा जन्म लेती है और शरीर के मरने पर मर जाती है तो भी शोक नहीं करना चाहिए। उत्पन्न हुए का मरना निश्चित है और मरे हुए का उत्पन्न होना भी निश्चित है। कितने प्राणी पहले अव्यक्त थे।अभी व्यक्त हैं फिर अव्यक्त हो जाएंगे। भीष्म आदि पहले नहीं थे आज है आगे नहीं रहेंगे। इसलिए इस विषय में परिदेवना शोक नहीं करना चाहिए। जिस विषय में हमारा सामर्थ्य नहीं है या जिस विषय में हम कुछ कर नहीं सकते उसे विषय में शोक नहीं करना चाहिए।

हरियाणा से पधारे अध्यापक सत्यपाल आर्य जी ने बताया कि हम सुख प्राप्ति के लिए यहाँ बैठे हैं। सुख कर्मों से आएगा। कौन से कर्म और किस कर्म से सुख आएगा? यदि डॉक्टरी सीखने वाला ठीक से नहीं सीखता या गाड़ी चलाने वाला अच्छी ट्रेनिंग नहीं लेता तो उसे आगे चलकर समस्या होगी। ऐसे ही हमें बुद्धि का विकास, शास्त्रों का ज्ञान, लौखिक व्यवहार सीखने के लिए गुरु के पास जाना होगा। गुरु हमारे बुद्धि को तरासते हैं। इसे बुद्धि सूक्ष्मतर होगी। कर्म करते समय आपके मन में जो विचार उत्पन्न होगा। उसमें आपका जितना गुरुजनों के प्रति श्रद्धा का भाव है उतना ही आपको लाभ होगा।

मुमुक्षु मुनि जो अब संन्यास लेकर स्वामी मोक्षाननद बन चुके हैं। आपने बताया कि शंका होती है कि ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करने से क्या ईश्वर बिना कर्मों के फल देगा या ज्यादा फल देगा? सत्यार्थप्रकाश में महर्षि ने बताया कि जैसे शीत से आतुर व्यक्ति का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे मनुष्य का ईश्वर की उपासना से दोष, क्लेश, दु:ख निवृत्त हो जाते हैं। ईश्वर में केवल सत्वगुण है। तमोगुण और रजोगुण नहीं है। ऐसे ही परमेश्वर की समीपता से हम सतोगुणी रहेंगे। परमात्मा निष्काम कर्म करता है हम भी परमात्मा को उपासना करेंगे तो हम भी निष्काम कर्म करेंगे। जो ईश्वर की स्तुति,प्रार्थना, उपासना नहीं करता वह कृतघ्न होता है।

श्री देवमुनि ने बताया कि हम कहीं जाते हैं तो श्रद्धा के भाव होते हैं। यदि हमारे अन्दर श्रद्धा है तो हम कार्य में गति दे सकते हैं। श्रद्धा का सत्य के साथ अटूट

सम्बन्ध है। श्रद्धा को लोगों ने भावनाओं से जोड़ दिया है। भावनाएं ऊपर नीचे होती है। अच्छा कार्य करते हैं तो श्रद्धा के पात्र बनते हैं। कुछ साधना कुछ तप करना होगा कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर को किसने देखा है हमारे अन्दर चलने की शक्ति, हाथ पैर की क्रिया आदि ईश्वर के कारण ही है।

श्रीमान् वासुदेव आर्य ने वेद मन्त्र के आधार पर बताया कि मनुष्य कैसे बने? धर्म को सभी लोगों ने स्वीकार किया। कुछ ने अहिंसा को परम धर्म माना। कुछ ने जिससे भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है उसे धर्म कहा। तुलसीदास ने वर्णाश्रम को धर्म कहा?। मनुस्मृति में सम्पूर्ण वेद धर्म को ही कहता है। बिना धर्म के मनुष्य पशु के समान है। विचारपूर्वक जो कार्य करता है वह मनुष्य है। हम मनुष्य बनाकर दिव्य सन्तान को जन्म दे। अच्छे कर्म करने वाले की रक्षा करें।

भजन के क्रम में श्रीमान् वासुदेव आर्य ने- परम पिता की तूने बंदगी बिसार दी, विषय विकारों में तूने जिंदगी गुजार दी?। पण्डित भूपेन्द्र जी- मैं तुमको पहचान ना पाया, तन के उजले मन के काले उनको सुन्दर में न कहूंगा। मुकेश जी- शरण अपनी में रख लीजिए दयामय दास हूं तेरा।

अतिथि होता- अजमेर आर्यवीर दल जिला संचालक श्री विश्वास पारीक ने सपरिवार अपनी पुत्री मनस्वी का जन्मदिवस यज्ञ व जन्मदिन की आहुति देकर मनाया। आचार्य कर्मवीर आदि आशीर्वाद दिया। अपने सभी आश्रमवासियों के लिए प्रात:राश की व्यवस्था की। बिहार से पधारे श्री देवेन्द्र वह श्रीमती नीलम ने अपने पुत्र लक्ष्य का जन्मदिवस यज्ञ कर व जन्मदिवस की आहूति देखकर मनाया। आचार्य कर्मवीर जी आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया साथ ही अजमेर निवासी श्री जगदीश प्रसाद ने अपने पौत्र श्री यज्ञदेव के जन्मदिवस के अवसर पर आश्रमवासियों के लिए दोपहर में विशेष भोजन की व्यवस्था की।

वह जीवन संग्राम था।

वह जीवन संग्राम था।
नाम गंगा राम था।।
दीन दु:खी की सेवा करते।
करता न विश्राम था।।
सेवा पथ पर उसका न कोई।
ठौर ठिकाना धाम था।।
जिससे जीवन ज्योति पाई।
देव दयानन्द नाम था।।
पुण्य प्रेरणा पाई जिससे।
प्रेरक लेखराम था।।
अन्यायियों से लड़ते-भिड़ते।
करता न विश्राम था।।
डूब रही विधवा की रक्षा।
कर्म अजब अभिराम था।।
परहित अड़ना लड़ना मरना।
यह बस उसका काम था।।
आना-जाना रहा जेल में।
धुन का यह परिणाम था।।
क्या पाया इस सेवा धन से?
व्यवहार सकल निष्काम था।।
पर पीड़ा हर कर 'जिज्ञासु'।
चमका गंगा राम था।।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। **आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।**

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। राशि जमा करने के पश्चात् दूरभाष द्वारा कार्यालय को अवश्य सूचित करें। दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से ३१ अगस्त २०२३ तक)

१. अजमेर फूड प्रोडक्टस, अजमेर २. श्री मनोज कुमार शारदा, अजमेर ३. श्रीमती अमिता ठाकुर, बीकानेर ४. श्री राम कुमार, करनाल ५. श्री देवकीनन्दन आर्य, अलीगढ़ ६. श्री जसवन्त राय, जयपुर ७. श्री सुशील कुमार, गुरुग्राम ८. श्री मोहित मेहता, गुरुग्राम ९. डॉ. अरुण क्षेत्रपाल, अजमेर १०. श्री भेरूलाल, झालावाड़ ११. श्रीमती सीमा गुप्ता, बिलासपुर १२. श्रीमती निधि गुप्ता, बिलासपुर १३. श्रीमती प्रतिभा हाडा, जबलपुर १४. श्री सुदर्शन आनन्द, नई दिल्ली १५. श्री अनुपम आर्य, जयपुर १६. श्री चान्द जैन, बाडमेर १७. श्रीमती सीता, जोधपुर १८. श्रीमती पुष्पा कृष्णाराम, नागौर १९. श्रीमती नेहा राहुत सोनी, अजमेर २०. श्री वेदप्रकाश गुप्ता, अजमेर २१. श्री महेशचन्द्र गर्ग, जयपुर २२. श्री चम्पालाल वानप्रस्थी, जोधपुर २३ श्री त्रिभुवन प्रकाश अग्रवाल, गाजियाबाद २४. श्री रामेश्वरलाल, जोधपुर २५. श्री श्याम सुन्दर, दिल्ली २६. श्री अरविन्द कुमार गुप्ता, मेरठ २७. श्री जयसिंह गहलोत, जोधपुर २८. श्री देवेन्द्र सिंह यादव, नई दिल्ली २९. श्री ईश्वर दयाल माथुर, जयपुर ३०. डॉलर फांउडेशन, कोलकाता

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से ३१ अगस्त २०२३ तक)

१. श्री सुदर्शन कपूर, पंचकुला २. श्री ओमप्रकाश नवाल, ब्यावर ३. श्रीमती रमा सुभाषचन्द नवाल, अजमेर ४. श्रीमती राज गुप्ता, अजमेर ५. श्री भगवानदास गोयल, सिलीगुड़ी ६. श्रीमती सीमा गुप्ता, बिलासपुर ७. श्रीमती निर्मला देवी, बिलासपुर ८. श्री सौमित्र कुमार गुप्ता, बिलासपुर ९. श्रीमती प्रेमलता गुप्ता, बिलासपुर १०. श्री सिद्धार्थ गुप्ता, बिलासपुर ११. श्री सुधीर गुप्ता, बिलासपुर १२. श्री सुनील नाहर, जोधपुर १३. श्री अमित व श्रीमती सुमन माहेश्वरी, पुणे १४. श्रीमती रतन कंवर व श्री अशोक लाखोटिया, दानदेली १५. श्री साहिल सुरेन्द्र वाघमारे, अमरावती १६. श्रीमती सरोज शर्मा, अजमेर १७. श्री आदित्य मुनि व श्रीमती कंचन गहलोत, अजमेर १८. श्री हरिशंकर खण्डेलवाल व श्रीमती सुशीला गुप्ता, अजमेर १९. श्री विक्रम सिंह यादव, जयपुर २०. डॉ. सुखबीर सिंह सांगवान, रोहतक २१. श्री उदयवीरसिंह मेरठ २२. श्री दीपक सिंह, अजमेर २३. श्री महेश/ओमवती/ऋचा अग्रवाल, जयपुर २४. श्री जितेन्द्र कुमार अग्रवाल, गाजियाबाद २५. श्री रमेशचन्द आर्य, आगरा २६. श्री श्रवण सरीन दिल्ली २७. श्री बीरमाराम करवा, भीलवाड़ा २८. श्री कृष्णगोपाल जेथलिया, अजमेर २९. श्रीमती शान्तिदेवी जेथलिया अजमेर ३०. श्री भगवानस्वरूप अजमेर ३१. मोनिका रेवाड़ी ३२. श्री अरविन्द राठी, भीलवाड़ा ३३. सुश्री योगिता कंवर, अजमेर ३४. श्री प्रणव शर्मा, अजमेर २५. श्री ब्रजभूषण गुप्ता, पंचकुला।

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. श्री विपिन कुमार, नई दिल्ली २. श्री नरेश कुमार, करनाल ३. श्री यज्ञयेश शर्मा, मथुरा ४. डॉ. सत्यदेव सिंह, मथुरा ५. श्री वेदप्रकाश आर्य, मुम्बई ६. श्रीमती तुलिका साहू, बिलासपुर ७. मै. मयंक प्लास्टिक, अजमेर ८. ब्रह्मचारी बीरमा आर्य, अजमेर ९. श्री विक्रम वाडेरा, नई दिल्ली १०. श्री सौजन्य गोयल, मुजफ्फरनगर ११. डॉ. अनुपमा व डॉ. अलका, पाठनकोट १२. श्री अनिल गुप्ता, अजमेर १३. श्रीमती राज गुप्ता, अजमेर १४. श्री सन्तोषी देवेन्द्र गुप्ता, बिलासपुर।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

---

yono SBI | SBI Payments

MERCHANT NAME : PROPKARNI SABHA
UPI ID : PROPKARNI@SBI

SCAN & PAY

BHIM
SBI Pay
BHIM UPI

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

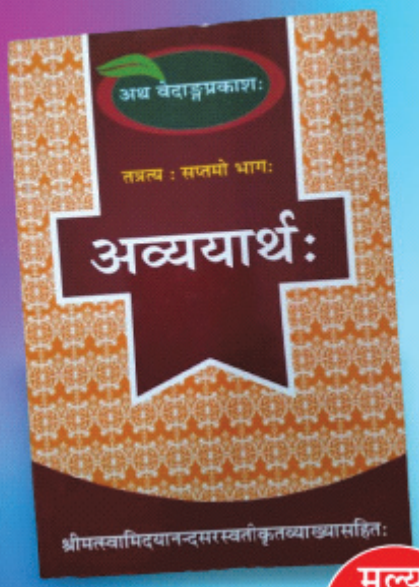

मूल्य ₹ 40/-

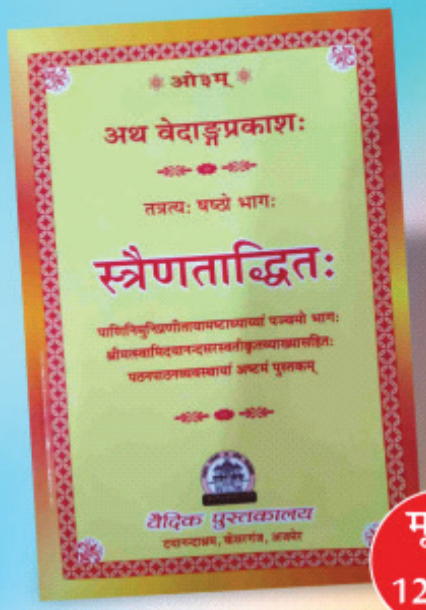

मूल्य ₹ 120/-

नवीन प्रकाशन

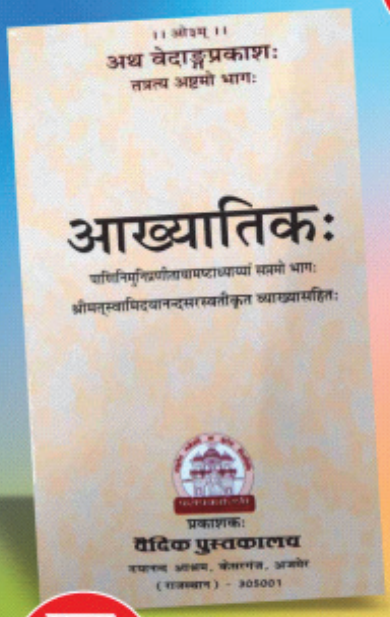

मूल्य ₹ 300/-

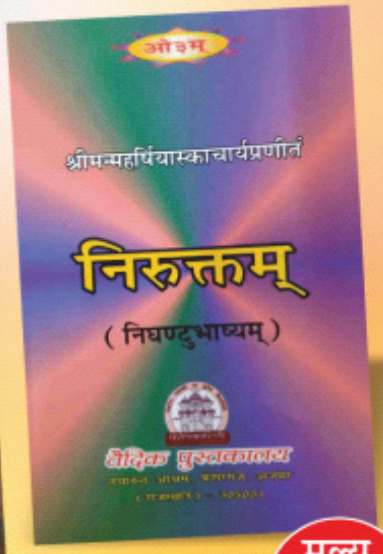

मूल्य ₹ 150/-

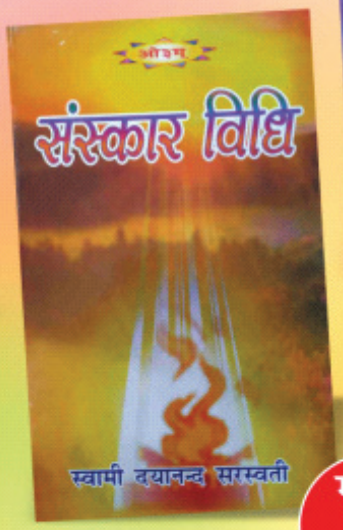

मूल्य ₹ 150/-

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक प्रेषण : ३०-३१ दिसम्बर २०२३ आर.एन.आई. ३९५९/५९

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

की

२०० वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

अन्तर्राष्ट्रीय ऋषि मेला

१७-२० अक्टूबर २०२४

सादर आमन्त्रण

प्रेषक:
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकिट